निवेदन

केवल भारतीय इतिहास मे ही नही परन्तु संसार के इतिहास में अशोक का अद्वितीय स्थान है।

इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध साहित्यज्ञ और इतिहासकार श्री एच. जी. वेल्स ने अपने 'संसार के इतिहास' ग्रन्थ में अशोक के विषय मे लिखा है—

"इतिहास के सैकडों नरेशो और सम्राटो के नामो के बीच अशोक का एक मात्र नाम तारे की भाँति चमकता जान पड़ता है।"

चन्द्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य की सहायता से जिस मौर्य साम्राज्य की भारत में स्थापना की थी वह साम्राज्य चन्द्रगुप्त के पुत्र विंदुसार के समय वैसा ही रहा। विंदुसार का बहुत कम विवरण इतिहास मे मिलता है। परन्तु अशोक ने एक तो उसमे वृद्धि की, दूसरे इसके लिए जो कलिंग देश मे युद्ध हुआ, उस युद्ध के पश्चात् अशोक के हृदय मे ऐसा परिवर्तन हुआ कि उसके समस्त आदर्श ही बदल गये और हर प्रकार की जीव-हिंसा छोड़ उसने सारे संसार को अहिंसा के द्वारा प्रेम-सूत्र मे बांधने का प्रयत्न किया। अशोक ने जो कुछ किया उस के सम्बन्ध में उसने अनेक शिलालेख लिखाये और इनमे से

जिन शिलालेखो का अब पता लगता है उससे भी ज्ञात होता है कि उसने कितने महान् कार्य किये थे।

दो संसारव्यापी युद्धो की विभीषिका के कारण कहीं तीसरा विश्वव्यापी युद्ध न हो जाय इस भय से समस्त ससार काँप रहा है। महात्मा गान्धी ने अहिंसा और प्रेम के सिद्धान्तों को राजनैतिक क्षेत्र मे भी दुनियाँ के सामने रक्खा। अहिंसा और प्रेम के सिद्धान्तों पर चलकर भारत स्वतंत्र हुआ और उन्ही सिद्धान्तों पर गान्धीजी के उत्तराधिकारी भारत-रत्न पं० जवाहरलाल नेहरू चल रहे है। इन्ही सिद्धान्तों को आज विश्व के अधिकांश विचारक संसार के त्राण का एक मात्र उपाय मानते है; इसीलिए भारत के बाहर जहाँ-जहाँ भी पं० नेहरू गये हैं और जा रहे हैं सभी जगह की जनता ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया है और वह अभूतपूर्व स्वागत कर रही है।

भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् सारनाथ के अशोक-स्तंभ का चार सिहो वाला मुकुट आधुनिक स्वतंत्र भारत का राज-चिह्न बनाया गया है और इसी स्तंभ के अशोक-चक्र ने भारतीय ध्वज के मध्य स्थान पाया है।

प्रस्तुत नाटक की रचना अशोक की जीवनी पर की गयी है। इसका न तो कोई पात्र काल्पनिक है और न कोई घटना। पात्रो में कुणाल की पत्नी को छोड़ शेष सभी पात्रों के नाम भी ऐतिहासिक हैं। कुणाल की पत्नी भी पात्र तो ऐतिहासिक ही है पर उसका नाम काञ्चनमाला कदाचित् काल्पनिक है।

उस समय जम्बूद्वीप भारत का नाम था या एशिया का, इस विषय मे विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। मैंने इस नाटक मे जम्बूद्वीप भारत का नाम न मानकर समूचे एशिया का माना है।

इस नाटक मे दूसरे अक के तीसरे दृश्य मे एक फुटनोट है कि कलिग का युद्ध सिनेमा से भी दिखाया जा सकता है। उपसंहार का तो पूरा दृश्य ही सिनेमा से दिखाया जाने वाला है, परन्तु यदि सिनेमा की व्यवस्था न हो सके तो दूसरे अंक के तीसरे दृश्य का वह भाग तथा उपसंहार छोड़कर भी नाटक खेला जा सकता है।

इस नाटक के लिखने मे मुझे निम्नलिखित ग्रन्थों से सहायता मिली है—

(१) केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, प्रथम भाग।

(२) दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल का दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, दूसरा भाग।

(३) डाक्टर भंडारकर कृत—अशोक।

(४) डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी कृत—मैन एण्ड थाट इन एनशेण्ट इण्डिया।

(५) डाक्टर बेनीमाधव बरुआ कृत—अशोक एण्ड हिज इन्सक्रिपशन्स।

(६) गुण्डोपन्त हरिभक्त कृत—अशोक और उसके लेख।

(७) डाक्टर हरिश्चन्द्र सेठ कृत—अशोक।

इस नाटक मे अशोक के जिन शिलालेखो को दिया गया है उनके हिन्दी अनुवाद प्रायः डाक्टर हरिश्चन्द्र सेठ की अशोक पुस्तक से लिये गये हैं । शिलालेखो मे से कौन शिलालेख महत्त्व के है इस विषय मे भिन्न-भिन्न मत हो सकते है, परन्तु किसी भी लेखक को ऐसे मामलो मे अपने मत पर ही चलना पड़ता है । अतः मेरी दृष्टि से अशोक के जो शिलालेख महत्त्व के हैं और इस नाटक के उपयुक्त, उन्हीं को इसमें रखा गया है ।

मेरे अन्य अधिकाश नाटकों के सदृश इस नाटक के गीत भी मेरी पुत्री रत्नकुमारी के लिखे हुए है ।

—गोविन्ददास

मुख्य पात्र, स्थान और समय

मुख्य पात्र : नाटक में प्रवेश के अनुसार

असंधिमित्रा	: (देवी, शाक्य कुमारी) अशोक की पहली रानी, विदिशा के एक देव नामक व्यापारी की पुत्री।
अशोक	: उज्जैन का राष्ट्रीय (राज्यपाल, गवर्नर), बाद में तक्षशिला का राष्ट्रीय, बाद में भारत सम्राट्।
महेन्द्र	: अशोक का पुत्र, जो भिक्षु हुआ और सीलोन गया।
संघमित्रा	: अशोक की पुत्री, जो भिक्षुणी हुई और सीलोन गयी।
सुभद्रांगी	: चपा के एक ब्राह्मण की पुत्री और अशोक की माता।
राधागुप्त	: अशोक का महामन्त्री।
विगताशोक	: (तिस्स) अशोक का छोटा भाई।
बिंदुसार	: अशोक का पिता, भारत सम्राट्।
कारुवाकी	: अशोक की दूसरी रानी।
कुणाल	. अशोक का पुत्र, तक्षशिला का राष्ट्रीय।
तीवर	. अशोक का कारुवाकी से उत्पन्न पुत्र।
उपगुप्त	: (मोगल्लीपुत्ततिस्स) अशोक का बौद्ध गुरु।
तिष्यरक्षिता	. (तिष्यरक्षा) असंधिमित्रा की दासी, आगे चलकर अशोक की रानी जिसने कुणाल को अन्धा किया।
काञ्चनमाला	· कुणाल की पत्नी।
दशरथ (सम्प्रति)	: कुणाल का पुत्र, बाद मे मौर्य साम्राज्य का युवराज।

स्थान

नाटक के	: अवन्ति, पाटलिपुत्र, कलिंग देश मे एक युद्ध-क्षेत्र।
उपसंहार का	: दिल्ली।

समय

नाटक का	: ईसा के २६३ वर्ष पूर्व से ईसा के २३५ वर्ष पूर्व तक।
उपसंहार का	: सन् १९४७।

'अशोक' नाटक में आये हुए कुछ प्राचीन शब्दों का अर्थ

पृष्ठ ५—राष्ट्रीय =राज्यपाल, गवर्नर।

पृष्ठ १०—महामात्य =प्रधान मन्त्री।

" "—लिपिकार =लिखने वाला।

" "—मुद्रिका =मोहर (सील)।

पृष्ठ १४—गर्भागार =राजभवन का भीतरी भाग।

" "—अवरोधन =अन्त पुर, जनानखाना।

पृष्ठ १५—महादेवी =पटरानी।

पृष्ठ २३—राजुक =राज्य-कर्मचारी जिसका स्थान आधुनिक कमिश्नर के सदृश होता था।

" "—युक्त =राज्य-कर्मचारी जिसका स्थान आधुनिक काल के जिलाधीश के सदृश होता था।

पृष्ठ २४—उष्णीश =सिर पर बाँधने का एक प्रकार का वस्त्र, पगडी या साफा।

पृष्ठ ३७—विहार-यात्रा =अशोक के समय की वह यात्रा जिनमें नागरिक खा-पीकर आनन्द करने के लिये इधर-उधर घूमते थे।

पृष्ठ ७५—नगर व्यावहारिक=वह कर्मचारी जिसके आधीन नगर का प्रवन्ध रहता था।

" "—प्रदेष्ट्री =वह राज्य-कर्मचारी जिसके आधीन कोई विशिष्ट प्रदेश रहता था।

पृष्ठ ७८—उपयुक्त =छोटे राज्य-कर्मचारी।

" "—विनययुक्त =उपयुक्त से छोटे राज्य-कर्मचारी।

" "—ग्राम कूट =ग्राम का राज्य-कर्मचारी।

" "—अत महामात्य =सीमाप्रान्तो का उच्च राज्य-कर्मचारी।

" "—व्रजभूमिक =वे राज्य-कर्मचारी जो गोचर भूमि का प्रवन्ध करते थे।

" "—मुखदूत =दूत।

पृष्ठ ७९—अनुस्यानयन =एक परिषद् जिसमें प्रजा के प्रतिनिधि भाग लेते थे।

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान : अवन्ति के राजभवन में असंधिमित्रा का कक्ष

समय उष काल

[कक्ष काष्ठ का बना हुआ है। इसकी तीन ओर की भित्तियाँ दीखती हैं, जिनके काष्ठ पर खुदाव का काम है। भित्तियों में कुछ छोटे-छोटे द्वार और खिड़कियाँ भी हैं। भित्तियों पर कुछ रंगीन चित्र लगे हैं, पर इन पर काँच नहीं है। कक्ष की छत भी काष्ठ की है और उस पर भी खुदाव का काम है। कक्ष की भूमि पर रंग-बिरंगी बिछावन बिछी है, जिस पर काष्ठ के शयन (एक प्रकार के उस काल के सोफा) और काष्ठ की आसन्दियाँ (एक प्रकार की उस काल की कुर्सियाँ) रखी हैं। शयन और आसन्दियों पर श्वेत वस्त्र से ढकी हुई गद्दियाँ बिछी हैं और गद्दियों पर श्वेत वस्त्र से ढके हुए तकिये लगे हैं। चाँदी की कुछ दीवटों पर दीप जल रहे हैं और कुछ धूपदानियों से धूप का मन्द-मन्द धूम उठ रहा है। एक शयन पर असंधिमित्रा बैठी हुई तमूरा बजाकर गा रही है। असंधिमित्रा लगभग तीस वर्ष की गौर वर्ण की अत्यन्त सुन्दर स्त्री है, मुख और शरीर के सारे अवयव ढले हुए से। वह शरीर पर कौशेय वस्त्र की साडी पहने है, उसी प्रकार का वस्त्र वक्षस्थल पर बाँधे

है। उसके अंगों पर स्वर्ण के रत्न-जटित आभूषण है ।]

गीत

छिपी तारो मे मृदु झंकार।
लीन विस्मृति मे सुख का सार,
हृदय की स्मृतियों का मधुभार,
जगाता एक नया संसार।
मधुर, नव, मूक, सलज उल्लास,
मौन अधरों पर खिलता हास,
नयन मे विम्बित स्वप्न-विलास,
विगत का सहज सरल इतिहास,
पुलक भरता तन मे अनजान,
बीन से झरते सस्वर गान,
दूर से सुन किसका आह्वान,
चकित से चञ्चल होते प्राण ।

[अशोक का प्रवेश। अशोक की अवस्था लगभग पैंतीस वर्ष की है। वह गेहुँए रंग का ऊँचा-पूरा गठे हुए शरीर का सुन्दर व्यक्ति है। वह भी कौशेय वस्त्र का अधोवस्त्र और उत्तरीय धारण किये है। उसके अंगों में भी स्वर्ण के रत्न-जटित भूषण हैं। सिर खुला हुआ है और उस पर लम्बे केश लहरा रहे हैं। अशोक असंधिमित्रा के निकट आसन पर बैठ जाता है। अशोक को देख असंधिमित्रा तमूरे को एक ओर रख देती है।]

अशोक : कुछ पहले ही पहुँच गया होता, परन्तु··

असंधिमित्रा : (बीच ही में) परन्तु मेरे गीत की भनक ने रोक दिया ?

अशोक : हाँ, देवि, उस मधुर स्वर-लहरी मे द्वार पर ही डूबा रहा। (कुछ रुककर) कितना · कितना सुन्दर एवं सुरीला गान था ; और' '' और उसकी मधुरता वढ़ गयी थी आज के इस मगल दिवस के कारण।

असंधिमित्रा : आज हमारे विवाह का बारह वर्ष का एक युग पूर्ण होता है, नाथ।

अशोक : महेन्द्र भी आज दस वर्ष का हुआ और आज ही उसकी ग्यारहवी वर्षगाँठ भी है। (कुछ रुककर) ऐसे दिवसों पर भूत की कितनी बातो का स्मरण हो आता है, प्रिये। पिताजी का मुझे इस अवन्तिका के राष्ट्रीय पद पर नियुक्त कर भेजना, विदिशा में अचानक तुम्हारे दर्शन, तुम्हारे पिता देव की अनुमति से एकाएक विवाह, कुछ ही समय मे पुत्री-रत्न की प्राप्ति और उसके दो वर्ष पश्चात् ही पावन कन्या का जन्म।

असंधिमित्रा : अब तक के जीवन के संस्मरण तो वड़े सुखद हैं, नाथ।

अशोक : और भविष्य तो सदा अनिश्चित रहता ही है।

असंधिमित्रा : विशेषकर उनका भविष्य जिनका राजनीति से सम्बन्ध है।

अशोक : ठीक कहती हो, प्रियतमे, यह राजनीति सदा ही अनिश्चित रहती है।

असंधिमित्रा : उन्नति और अवनति दोनो ही दृष्टि से, नाथ ।

अशोक : हाँ, दोनो ही दृष्टि से, देवि। जिस समय भारत विदेशियो के आक्रमणों से पद-दलित हो रहा था, कौन जानता था एकाएक पितृव्य चन्द्रगुप्त का उदय होगा और वे आर्य चाणक्य की सहायता से अलक्षेन्द्र के सदृश विश्व-विजेता को भारत भूमि से निकाल देगे। कौन जानता था पितृव्य चन्द्रगुप्त ही सिल्यूकस को हरा उनकी कन्या हेलन से विवाह करेंगे ।

असंधिमित्रा : हाँ, मौर्यवश का अब तक का इतिहास तो अत्यन्त जाज्वल्यमान रहा है

अशोक : पर भविष्य की तुम्हे चिन्ता है !

असंधिमित्रा : तुम्ही ने अभी स्वीकार किया कि राजनीति वड़ी अनिश्चित वस्तु है ।

अशोक : पितृव्य चन्द्रगुप्त की देन को पिताजी सुरक्षित तो रख सके, कोई शत्रु सिर न उठा सका इसीलिए वे अमित्राघाट की पदवी से विभूषित हैं, परन्तु राज्य का और विस्तार उनसे न हो सका । इस विश्व मे वस्तुएँ स्थिर नही रहती, या तो उन्नति होती है या अवनति । भविष्य उन्नतिशील इस लिए और भी प्रतीत नही होता कि पिताजी वृद्ध हो गये है और उनके पश्चात् सुसीम के सदृश व्यक्ति सम्राट् होगे।

असंधिमित्रा : यदि तुम्हारी विमाता के सुसीम को जन्म देने के पूर्व माता सुभद्रांगी ने तुम्हें जन्म दे दिया होता, सुसीम तुम्हारा अग्रज न होता !

[अशोक सिर झुकाकर कुछ सोचने लगता है। असंधि-मित्रा उसकी ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता।]

अशोक : (सिर उठाते हुए) पर एक बात जानती हो, प्रिये ?

असंधिमित्रा : क्या ?

अशोक : मुझे कई बार संस्कृत की एक उक्ति स्मरण हो आती है।

असंधिमित्रा : कौनसी ?

अशोक : 'वीर भोग्या वसुन्धरा' ।

असंधिमित्रा : (कुछ आश्चर्य से) तो क्या मौर्यवंश मे गृह-कलह होगा, प्रिय !

अशोक : सुसीम के सदृश पुरुषार्थहीन, अकर्मण्य, नपुंसक व्यक्ति के हाथ मे भारतीय साम्राज्य की सत्ता जाने और उसके विध्वंस, नष्ट-भ्रष्ट होने की अपेक्षा मौर्यवंश का गृह-कलह कदाचित् कही अधिक कल्याणकारी होगा !

[प्रतिहारी का प्रवेश। प्रतिहारी वृद्ध व्यक्ति है; लम्बी मूँछें और श्वेत दाढ़ी है। ऊपर के अंग में एक लम्बा कंचुक पहने है और नीचे के अग में अधोवस्त्र। सिर पर पगड़ी है। अंगों में स्वर्ण के भूषण है। उसके हाथ में एक लम्बे पोंगले मे राजपत्र है। वह आकर झुककर अभिवादन करता है तथा पत्र अशोक को देता है।]

प्रतिहारी : मगध से राजराजेश्वर का यह पत्र लेकर एक अश्वारोही आया है, श्रीमान् !

[अशोक पोंगला को खोलकर पत्र पढ़ता है। असंधिमित्रा

अशोक की ओर देखती है। प्रतिहारी सिर झुकाये हाथ बाँधे खड़ा रहता है।]

अशोक : (पत्र पढ़ने के पश्चात् आतुरता से खड़े हो, प्रसन्न मुद्रा में, प्रतिहारी से) अच्छा, तुम जाओ, प्रतिहारी। मगध के अश्वारोही को अतिथि-आलय मे सुविधापूर्वक ठहरा दो।

[प्रतिहारी का नमन कर प्रस्थान।]

अशोक : (प्रसन्नता से असंधिमित्रा से) तक्षशिला मे विद्रोह हुआ है; सुसीम उसका दमन नही कर पा रहा है। पिताजी ने मुझे तत्काल तक्षशिला प्रस्थान की आज्ञा भेजी है। (इधर-उधर टहलने लगता है।)

असंधिमित्रा : तुमने कुछ ही क्षण पूर्व सुसीम के लिए पुरुषार्थ-हीन, अकर्मण्य, नपुंसक विशेषणो का प्रयोग ही किया था।

अशोक : मेरे वे विशेषण कितने सही थे, उनका तुम्हे कुछ ही क्षणो में प्रमाण मिल गया, देवि। (फिर शयन पर बैठ जाता है।)

असंधिमित्रा : (कुछ दुखित स्वर में) तो अब तुम्हारा तक्ष-शिला प्रस्थान होगा!

अशोक : मेरा अकेले नही, साथ मे तुम, महेन्द्र, संघमित्रा सब चलेंगे।

असंधिमित्रा : (कुछ आश्चर्य से) तक्षशिला के विद्रोह का दमन सकुटम्ब चलकर करोगे, नाथ ?

अशोक : यहाँ से सकुटम्ब चलेगे। पाटलिपुत्र मे तुम लोगों को

छोड़ दूँगा और तक्षशिला के विद्रोह का दमन कर मैं शीघ्र ही पाटलिपुत्र लौट आऊँगा।

असंधिमित्रा : नही, महेन्द्र और सघमित्रा को पाटलिपुत्र छोड़कर हम दोनो तक्षशिला चलेंगे।

अशोक : यह भी हो सकता है।

असंधिमित्रा : (प्रसन्नता से) यह कार्यक्रम सर्वथा ठीक है।

अशोक : (विचारते हुए) देखो, प्रियतमे, यह सुसीम एक प्रदेश का विद्रोह भी शान्त न कर सका। यदि भारतीय साम्राज्य इसके हाथ मे गया तो उसकी क्या दशा होगी इसका अनुमान किया जा सकता है।

असंधिमित्रा : बिलकुल !

अशोक : मैने अभी तुम्हे सस्कृत की एक उक्ति बतायी थी 'वीर भोग्या वसुन्धरा'। मुझ मे कोई महत्त्वाकाक्षा नही है यह मै नहीं कहता; महत्त्वाकाक्षा मानव की स्वाभाविक वृत्ति है।

असंधिमित्रा : इसमे भी कोई सन्देह है।

अशोक : परन्तु इस महत्त्वाकाक्षा के अतिरिक्त भी जब मैं देश की ओर दृष्टिपात करता हूँ तब भी मुझे सुसीम का सम्राट् होना किसी भी प्रकार देश के लिए कल्याणकारी नही दीखता।

असंधिमित्रा : कदापि नही।

अशोक : पितृव्य चन्द्रगुप्त की देन का पिताजी यदि विस्तार नही कर पाये तो कम से कम उन्होने उसका सरक्षण तो किया। सुसीम से यह नही होने वाला है।

असंधिमित्रा : कभी नही होगा ।

अशोक : तक्षशिला के विद्रोह का दमन कर मुझे यह देखना है कि भारतीय साम्राज्य किसी प्रकार भी उन पुरुषार्थ-हीन, अकर्मण्य और नपुसक व्यक्ति के हाथ मे न जावे । मेरे इस कार्य मे महामात्य राधागुप्त भी मेरे सहायक होगे । मेरे तक्षशिला जाने को पिताजी की आज्ञा का यह राज-पत्र महामात्य राधागुप्त का लिखा हुआ है । उनके अक्षर मै पहचानता हूँ । पत्र पर गोपनीय शब्द अंकित हैं, ऐसे पत्रो के लिए लिपिकार का कार्य स्वय महामात्य करते हैं और मुद्रिका के साथ हस्ताक्षर होते हैं सम्राट् के ।

[अशोक पत्र असंधिमित्रा को देता है । असंधिमित्रा उसे पढ़ती है । कुछ देर निस्तब्धता ।]

अशोक : मै समझता हूँ, प्रिये, मेरे उत्कर्ष का समय आ पहुँचा है । तक्षशिला के विद्रोह का दमन मेरे बायें हाथ का खेल है । सुसीम जो न कर सका क्षणो मे कर डालने पर मेरा जो स्थान होगा उसका तुम अनुमान कर सकती हो ।

असंधिमित्रा : वह अद्वितीय स्थान होगा ।

अशोक : पिताजी के पश्चात् यदि भारतीय साम्राज्य मेरे हाथ मे आया तो भारत के एकीकरण मे जो कसर पितृव्य चन्द्रगुप्त के समय मे भी रह गयी है उसे मैं पूर्ण करूँगा । ऐसा साम्राज्य होगा, ऐसा उसका प्रबन्ध जैसा इस देश के इतिहास में कभी नही हुआ ।

[महेन्द्र और संघमित्रा का प्रवेश । महेन्द्र की अवस्था

वस्त्र से ढकी गद्दी है, जिस पर तकिये लगे है। सिंहासन के दोनों ओर चबूतरे के नीचे स्वर्ण की कुछ आसन्दियाँ है। इन आसन्दियो पर श्वेत वस्त्र से ढकी हुई गद्दियाँ है, जिन पर तकिये है। सिंहासन के निकट की दाहनी ओर की आसन्दी पर महाधर्माध्यक्ष बैठा है। महाधर्माध्यक्ष की अवस्था सत्तर वर्ष से कम नहीं है। उसके सिर, भवें तथा मूँछों दाढ़ी के बाल श्वेत हो गये हैं। वह गौरवर्ण का ऊँचा-पूरा और मोटा व्यक्ति है। केशों की शुभ्रता के अतिरिक्त वृद्धावस्था के कोई चिह्न उसके शरीर पर नहीं हैं। वह सूती मोटे वस्त्र का उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये है। अंगो पर कोई भूषण नहीं है। सिर पर भस्म लगी हुई है। उसके निकट की दूसरी आसन्दी पर विगताशोक बैठा है। सिंहासन के निकट की बायीं ओर की आसन्दी पर राधागुप्त बैठा है। बायीं ओर की अन्य आस-सन्दियों पर महेन्द्र, संघमित्रा है। सिंहासन के सामने अर्धचन्द्राकार पंक्तियों में रजत की आसन्दियाँ है। आसन्दियों पर श्वेत वस्त्र से ढकी हुई गद्दियाँ है और गद्दियो पर तकिये। आस-न्दियों का मुख सिंहासन की ओर है। इन आसन्दियों पर राज-पुत्र, राष्ट्रीय, राजुक, युक्त और प्रतिष्ठित नागरिक आदि बैठे हुए हैं। आसन्दियों की पंक्तियो के बीच मे से एक मार्ग है, जो सिंहासन तक चला गया है। सारा आलय मगल कलशों, कदली के वृक्षों, पत्र-पुष्पों की वन्दनवारो से सजाया गया है। मंगल कलश मिट्टी के हैं। इन पर सुन्दर रगीन बेल-बूटे हैं। इन पर पंचपल्लव है, जिनके ऊपर मिट्टी के सकोरो में धूप

जल रही है, जिसका मन्द-मन्द धूम उठ रहा है। थोड़ी ही देर में नेपथ्य में पंच महावाद्यो की ध्वनि सुन पड़ती है। इस ध्वनि को सुन आलय में बैठे हुए सब लोग खड़े हो जाते हैं। स्वर्ण की शिविका पर अशोक का प्रवेश। शिविका के आगे पंच महावाद्य वादक वाद्य बजाते चल रहे हैं। पाँचो कंचुक और अधोवस्त्र पहने तथा सिर पर उष्णीश बाँधे हैं। पाँचो स्वर्ण के आभूषण भी पहने हैं। वाद्य-वादको के पीछे शिविका के आगे दो छड़ीदार चल रहे हैं। ये भी ऊपर के अंगो में कंचुक पहने हैं और नीचे के अंगो में अधोवस्त्र। इनके सिर पर भी उष्णीश है। ये भी स्वर्ण के आभूषण धारण किये हैं। इनके दाहने हाथों में स्वर्ण की रत्न-जटित मोटी छड़ियाँ हैं। चार शिविका-वाहक शिविका को उठाये हुए हैं। ये चारो नीचे के अग में अधोवस्त्र पहने हैं और शिविका उठाने के कारण इनके ऊपर के अग खुले हुए हैं। इनके सिर पर भी उष्णीश है और अगों पर स्वर्ण आभूषण हैं। शिविका खुली हुई है। शिविका के पीछे एक छत्र-वाहिका, दो चाँवर वाहिकाएँ और दो व्यजन-वाहिकाएँ हैं। सभी वाहिकाएँ तरुणियाँ हैं। वाहिकाएँ कौशेय की साड़ियाँ पहने हैं और वैसा ही वस्त्र वक्षस्थल पर बाँधे हैं। अंगों पर स्वर्ण के आभूषण धारण किये हैं। छत्र-वाहिका शिविका के पीछे बीच में चल रही है। वह स्वर्ण की रत्न-जटित डाँडी वाला कौशेय वस्त्र का श्वेत छत्र अशोक पर लगाये है। इस छत्र में मोतियो की झालर है। छत्र-वाहिका के उभय ओर चाँवर वाहिकाएँ चल रही हैं। ये स्वर्ण की रत्न-जटित

डाँडियों वाली सुरा गाय की पुच्छ की श्वेत चाँवरें अशोक पर डुला रही हैं। इन वाहिकाओं के दोनों ओर व्यजन-वाहिकाएँ चल रही हैं। ये हाथी-दाँत की डाँडियों के खस के व्यजनो से हवा कर रही हैं। अशोक आज राजसी वेश में है। ऊपर के शरीर पर कौशेय वस्त्र का सुनहरी काम वाला पिण्डलियों तक नीचा कंचुक है। नीचे के अंग में वैसा हो सुनहरी काम वाला अधोवस्त्र है। कंचुक पर सुनहरी दमकता हुआ दुकूल है। परन्तु सिर खुला हुआ है। अंगों में रत्नजटित जगमगाते हुए भूषण हैं। शिविका सिंहासन के सामने रखी जाती है। अशोक शिविका से उतरता है। समस्त सभासद हाथ बाँध सिर को बहुत नीचे झुका अभिवादन करते हैं। अशोक सिर झुका अभिवादन का उत्तर देता है और सिंहासन पर बैठता है। छड़ीदार सिंहासन के चबूतरे के नीचे सिंहासन के दोनों ओर खड़े हो जाते हैं। वाहिकाएँ जिस प्रकार शिविका के पीछे चल रही थीं उसी प्रकार सिंहासन के पीछे खड़ी हो जाती हैं। आगे वाद्य-वादक और उनके पीछे शिविका-वाहक शिविका उठाकर बाहर जाते हैं। महाधर्माध्यक्ष उठकर सिंहासन के सामने जा पूजन की सामग्री वाले थाल से कुमकुम लेकर अशोक के ललाट पर राजतिलक करता है, इसके पश्चात् दूसरे थाल से राजमुकुट ले अशोक के सिर पर राजमुकुट लगाता है, तदुपरान्त पूजन के थाल में जो छोटा-सा जल-कलश रखा है, उसे उठा उसी कलश में पड़े हुए कुश से अशोक का मार्जन करते हुए अभिषेक का मन्त्र बोलता है।]

महाधर्माध्यक्ष : याभिरद्भिरिन्द्रमभ्य सिञ्चत्
प्रजापति. सोम राजानं वरुणं यमं मनुं
ताभिरद्भि सिञ्चामि त्वामहं
राज्ञा त्वमधिराजोभवेह ।

सभासद : (एक स्वर से) महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, सम्राट् अशोकवर्धन की जय ! महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, अमित्राघाट विंदुसार की जय ! महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, सम्राट चन्द्रगुप्त की जय ! आर्य चाणक्य की जय !

अशोक : (सिंहासन से उठ व्यास-पीठ पर वैठकर) महाधर्माध्यक्ष, महामत्य, राजपुत्रो, राष्ट्रीयगण, राजुको, युक्तो, नागरिको तथा सभासद्गण ! पूज्यपाद अमित्राघाट पिता जी के स्वर्गारोहण को चार वर्षो के एक युग से भी कुछ अधिक व्यतीत हो गया । यद्यपि उन्होंने अपने जीवन-काल मे ही मुझे युवराज पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था और इस संबंध मे राजघोषणा भी हो गयी थी तथापि मौर्यवंश के गृह-कलह के कारण गत चार वर्षों तक भारत मे रक्तपात होता रहा । आज के राजतिलक का यह समारोह यद्यपि पूज्यपाद पिताजी के स्वर्गारोहण के पश्चात्, राजशोक के समय के उपरात, तुरन्त हो सकता था, परंतु मैने यह उचित न समझा कि पूज्यपाद पिताजी के स्वर्गारोहण के पश्चात् राजशोक के समय मे ही गृह-कलह के जो काण्ड आरम्भ हो गये थे उनके शमन के पूर्व मै यह समारोह कराता ।

सभासद : धन्य है ! धन्य है !

अशोक : मैने यह उचित समझा कि पूज्यपाद पिताजी के मुझे युवराज-पद देने पर भी पहले इसी बात की परीक्षा हो जाय कि राज्यसिंहासन के योग्य कौन व्यक्ति है। इसी लिए जब तक गृह-कलह के शेष के अवशेष का भी अंश इस राज्य मे कही भी रहा, मैंने आप लोगों की बार-बार इच्छा होने पर भी यह समारोह नही होने दिया।

सभासद : धन्य है ! धन्य है !

अशोक : भगवान् की कृपा और आप सबकी सद्भावना के कारण मैं इस आत्म-परीक्षा मे उत्तीर्ण हो गया। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक अब समूचे भारतीय साम्राज्य मे शान्ति है। अतः 'वीर भोग्या वसुन्धरा' की उक्ति के अनुसार जो राज्य-सिंहासन के योग्य था वही आज इस सिंहासन पर सिंहासनासीन हो सका है।

सभासद : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

अशोक : आर्य चाणक्य के शुभ प्रयत्नो से पितृव्य चन्द्रगुप्त ने इस पुण्य भूमि से विदेशियों का निष्कासन कर जिस साम्राज्य को स्थापित किया था, उस साम्राज्य का सारा राजकाज उन्ही आदर्शो, उद्देश्यो और सिद्धान्तो के अनुसार चलेगा। भारतवर्ष के जो भाग अभी भी साम्राज्य के बाहर है वे साम्राज्य मे सम्मिलित किये जायेंगे। यदि वे स्वय सम्मिलित होंगे तो मुझे अत्यधिक हर्ष होगा, पर यदि वे स्वयं सम्मिलित न हुए तो बल प्रयोग करके भी

उन्हें सम्मिलित करने मे मैं आगा-पीछा न करूँगा ।

सभासद : अवश्य, अवश्य ।

अशोक : यह इसलिए कि केवल भारत का ही नहीं पर समूचे जम्बूद्वीप का भावी उत्कर्ष मैं भारतीय साम्राज्य की एकता पर मानता हूँ ।

सभासद : निस्सदेह, निस्सदेह ।

अशोक : इसी के साथ उत्तरापथ से दक्षिणापथ तक समूचे भारत मे शान्ति की स्थापना रहेगी और उस शान्ति को भग करने का यदि किसी ने प्रत्यक्ष मे या परोक्ष मे, जान मे या अनजान मे कोई प्रयत्न किया तो उसे मृत्यु-दण्ड से छोटा कोई दण्ड न दिया जायगा ।

सभासद : धन्य है ! धन्य है !

अशोक : इस अवसर पर एक घोषणा और कर दूँ, जिसे सारा ससार सुने । किसी भी विदेशी ने भारत पर यदि भूल से भी लालच भरी कोई कुदृष्टि उठायी, और इसकी मुझे विश्वसनीय सूचना मिली, तो भारत पर तो उसका आक्रमण दूर की बात होगी उस पर भारतीय आक्रमण तत्काल किया जायगा और वह मिट्टी मे मिला दिया जायगा ।

सभासद : (उत्साह से) राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

अशोक : मेरे इन समस्त कार्यों मे मुझे आप सबके सहयोग की वैसी ही आवश्यकता है जैसी गत चार वर्षों के एक युग मे मौर्यवंश के गृह-कलह को शमन करने मे थी ।

एक सभासद : (अत्यन्त उत्साह से) सबका आपको सहयोग प्राप्त रहेगा ।

सभासद : (एक साथ) अवश्य, अवश्य ।

एक सभासद : भारतीय साम्राज्य के एक-एक बालक, युवक और वृद्ध का ।

दूसरा सभासद : नर और नारियो सभी का ।

सभासद : (एक साथ अत्यन्त उत्साह से) निस्संदेह ।

सभासद : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

अशोक : इस भारतीय साम्राज्य के महामात्य आर्य राधागुप्त होगे और इस शुभ अवसर पर मै उन्हे एक नयी उपाधि से विभूषित करता हूँ, यह उपाधि है 'अग्रामात्य' !

साभसद : (उत्साह से) 'अग्रामात्य' आर्य राधागुप्त की जय !

[अशोक व्यासपीठ से उठकर पुनः सिंहासन पर बैठता है । बहुत देर तक उत्साह से जयघोष होता रहता है । अब नर्त्तकियाँ आती है, और नृत्य होता है । नर्त्तकियाँ युवतियाँ हैं । इनकी और वाहिकाओं की वेशभूषा में इतना ही अन्तर है कि इनके नीचे के अग की साड़ियों में नृत्य के लिए अधिक घेर है और पैरों में घूँघरू हैं नृत्य के पश्चात् गान होता है ।]

गीत

सृष्टि को घेरे बहु विध ताप ।
नियति का अति निष्ठुर अभिशाप ।
ताप से त्रसित मनुजं अवलोक,
नयन मे नीर हृदय मे शोक,

द्रवित उर मे प्रतिविम्बित क्रान्ति,
स्वर्ग से भू पर आयी शान्ति।
अहिंसा का पावन सन्देश,
बने भू पर तव, राज्यादेश।
भीत त्रसित दुर्वल संसार,
युगों तक मानेगा आभार।

यवनिका

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान . पाटलिपुत्र के राजभवन के गर्भागार के
अवरोधन मे असधिमित्रा का कक्ष
समय रात्रि

[यह कक्ष यद्यपि वैसा ही है तथा उसी प्रकार सजा हैं जैसे पहले अक के पहले और दूसरे दृश्य का कक्ष था तथापि यह काष्ठ के स्थान में पत्थर का बना हुआ है। असंधिमित्रा एक शयन पर बैठी हुई तमूरा बजाकर गा रही है।]

गीत

कब जाना है उस ओर !
किस रहस्य से आवृत सजनी ! जीवन का वह छोर ?
विस्मृति मे स्मृति का विकास,
अन्धकार मे किरण-हास,
सिन्धु पार कर पहुँच विन्दु पर पा जाऊँगी भोर।
आशा का उन्माद भग्न,
उदासीन आनन्द मग्न,
स्वप्नो की मोहक छलना मे जाग्रति जगी हिलोर।

[गीत पूर्ण होते-होते कारुवाकी का प्रवेश। असंधिमित्रा में अब प्रौढ़ता आ गयी है। कानो के समीप कुछ बाल भी

श्वेत हो गये हैं। वेश-भूषा पहले के समान है। कारुवाकी लगभग ३० वर्ष की अवस्था की युवती है। वर्ण गौर, मुख और शरीर के अवयव अत्यन्त सुन्दर। वह कौशेय वस्त्र की सुनहरी काम वाली साड़ी पहने है और इसी प्रकार का वस्त्र वक्षस्थल पर बाँधे है। अंगों में रत्न-जटित आभूषण है।]

कारुवाकी : जीजी, शरीर और मन की प्रौढता के साथ ही आपके स्वर और गान के विषय मे भी प्रौढता आ चली है। (शयन के निकट की आसन्दी पर बैठती है।)

असंधिमित्रा : (मुस्कराकर) यह अच्छी बात है या बुरी ?

कारुवाकी : (कुछ विचारते हुए) यह कहना तो कठिन है, परन्तु इस सृष्टि के नियमो के अनुसार बाल्यावस्था, तरुणाई, प्रौढ़ता और वृद्धावस्था ये सब अवश्यम्भावी हैं।

असंधिमित्रा : और यदि तरुणाई मे ही किसी का मन प्रौढ़ होने लगे तो ?

कारुवाकी : तो वह उतनी ही बुरी बात होगी जितनी प्रौढावस्था मे मन की तरुणाई।

[दोनों जोर से हँस पड़ती है]

कारुवाकी : जीजी, मै सुना करती थी कि सौतो के सम्बन्ध बड़े संतापकारी होते है और यदि एक सौत प्रौढ हो और दूसरी युवती तब तो वह प्रौढा युवती के जीवन को नरकवत् बना देती है। परन्तु यहाँ तो बात ही उलटी हुई। मैंने आप से जैसा स्नेह पाया वैसा तो माता से भी न मिला था।

असंधिमित्रा : कह नही सकती तुम्हारे इस कथन मे कितनी

अतिशयोक्ति है। परन्तु सौतो का सम्बन्ध सतापकारी क्यों होना चाहिए यह मेरी समभ मे नही आता।

कारुबाकी : इसलिए कि सौत पति के प्रेम मे साझेदार होती है।

असंधिमित्रा : पर सच्चे स्नेह का स्वरूप तो संकीर्ण न होकर व्यापक है। वह तो समस्त सृष्टि पर फैलाया जा सकता है। और यदि सृष्टि की अनन्त वस्तुएँ स्नेह के संसार मे साझेदार रह सकती है तो सौतें क्यो नही ?

कारुबाकी : परन्तु, जीजी, प्रणय के सच्चे रूप को पहचानने की शक्ति होनी चाहिए और उसी के साथ उदारता।

असंधिमित्रा : फिर एक बात और देखो, पुरुषो के लिए बहु-पत्नियाँ कदाचित् स्वाभाविक बात है।

कारुबाकी : यह तो आप नही कह सकती।

असंधिमित्रा : क्यों ?

कारुबाकी : इसलिए कि फिर द्रौपदी के लिए क्या कहेगी ?

[**दोनों का अट्टहास।**]

कारुबाकी : सुनती हूँ, पहले विवाह-संस्था ही नही थी ?

असंधिमित्रा : यह सत्य है। महाभारत मे ही उद्दालक और श्वेतकेतु का एक उपाख्यान है, जिससे यही बात सिद्ध होती है।

कारुबाकी : फिर गणविवाह निकले।

असंधिमित्रा : इसे भी विद्वान् स्वीकार करते है।

कारुबाकी : इसके पश्चात् एक नारी के अनेक पति।

असंधिमित्रा : यह भी ठीक है।

कारुबाकी : और फिर एक पति की अनेक पत्नियाँ।

असंधिमित्रा : आजकल की सामाजिक अवस्था मे एक पति की अनेक पत्नियाँ ही स्वाभाविक माना जाता है।

कारुबाकी : मेरे प्रति तो आपका अगाध प्रेम है, पर अधिकतर ऐसा नही होता और फिर सौतेले भाइयो मे कैसे संघर्ष होते है, यह हम मगध मे ही देख चुके है।

असंधिमित्रा : ये संघर्ष तो सौतेले भाइयो मे ही न होकर एक माँ के जाये हुए भाइयो मे भी होते है। संस्कृत साहित्य मे कुछ स्वाभाविक मित्र माने गये है और कुछ स्वाभाविक शत्रु। भाइयो की गणना स्वाभाविक शत्रुओ मे की गयी है।

कारुबाकी : पर, महेन्द्र, कुणाल और तीवर के वीच सौतेले होने पर भी कितना अधिक स्नेह है। यह कदाचित् उसी प्रकार जैसे सौते होने पर भी आपका और मेरा प्रेम !

[अशोक का प्रवेश। उसके चेहरे से भी जान पड़ता है कि वह भी अब प्रौढ़ हो चला है। उसके कानो के समीप के केश भी श्वेत हो गये हैं। उसकी मुद्रा से ज्ञात होता है कि वह अनमना-सा है। उसे देख असंधिमित्रा और कारुबाकी खड़ी हो जाती हैं। अशोक शयन पर बैठता है। उसके निकट असंधिमित्रा बैठती है और शयन के निकट की एक आसंदी पर कारुबाकी। अशोक सिर झुकाये हुए कुछ सोचता रहता है। असंधिमित्रा और कारुबाकी उसकी ओर देखती रहती हैं। कुछ देर निस्तब्धता।]

असंधिमित्रा : आजकल कुछ अनमने-से रहते हो, क्यो ?

कारुवाकी : कुछ नही, वहुत ।

अशोक : नही, अनमना तो नही रहता, पर कुछ सोच-विचार मे अवश्य रहता हूँ ।

असंधिमित्रा : तुम्हारी तो अब एक नही, दो-दो अर्धांगिनी है अर्थात् आधे अग मे तुम और एक-एक चौथाई अग मे, हम दोनो।

[सब का अट्टहास।]

अशोक : (हँसते हुए) गणित की गणना के अनुसार तो तुमने ठीक कहा, देवि ।

असंधिमित्रा : प्रयत्न तो मै यही करती रहती हूँ कि कोई असगत बात न कहूँ ।

कारुवाकी : आपके मुख से कभी कोई असंगत बात निकल सकती है !

असंधिमित्रा : मै कह यह रही थी कि हम तुम्हारी अर्धांगिनियाँ तुम्हारे इस सोच-विचार मे क्या सहभागिनी नही हो सकती ?

अशोक : आज तुम दोनो को मै सहभागिनी बनाने ही आया हूँ। मेरे मन मे आजकल एक संघर्ष चलाने मे लगा है।

असंधिमित्रा : कैसा ?

अशोक : यह कि जिस मार्ग पर मै चल रहा हूँ, वह ठीक मार्ग है या नही ? हिंसा से राज्य-विस्तार, आमोद-प्रमोद, विहार, यात्राएँ, ये ठीक है या अहिंसात्मक सद्धम्म ग्रहण करना।

असंधिमित्रा : राज्याभिषेक के चौथे वर्ष से ही सद्धम्म के प्रति तुम्हारा आकर्षण हो गया था, वरन् तुम सद्धम्म की 'उपासक' श्रेणी मे भी आ गये थे। भारत के प्रमुख स्थानों में चौरासी हजार विहार भी बनाने का निश्चय अधिकांश स्थानो में कार्य रूप मे परिणत हो गया है। पाटलिपुत्र के प्रसिद्ध अशोकाराम की चहल-पहल तो समस्त देश में विख्यात है, पर अब कदाचित् स्वय भी तुम सम्राट् से भिक्षु होना चाहते हो ?

अशोक : भिक्षु होना चाहता तो हो न जाता ! जीवन मे जब जो चाहा वही तो किया है मैंने, प्रिये। किस कृति के लिए कौन रोक सका मुझको ? मै अब क्या चाहता हूँ इस सम्बन्ध मे मै स्वयं ही अपने को नही समझ पा रहा हूँ। पर इतना स्पष्ट है कि राज्याभिषेक के पूर्व कर्त्तव्य-पथ के सम्बन्ध मे मेरी भावनाएँ जितनी स्पष्ट थीं अब नहीं है। फिर जो तुमने यह कहा कि राज्याभिषेक के चौथे वर्ष से मेरे मन मे परिवर्तन हुआ है यह भी नही है।

असंधिमित्रा : तब ?

अशोक : वह राज्याभिषेक के दिन नर्तकियों के गान के समय से ही हुआ; हाँ, उसके दर्शन राज्याभिषेक के चौथे वर्ष से हुए। और अब तो मानसिक सघर्ष बढता ही जाता है। तुम लोगो को जो मै अनमना जान पड़ता हूँ वह इसी मानसिक सघर्ष के कारण। मेरे मन में अब बार-बार एक बात आती है।

असंधिमित्रा : कौनसी ?

अशोक : इस जीवन का कोई ठिकाना नही और जीवन सफल हुआ या असफल इसका निर्णय जीवन का अन्तिम क्षण करता है। उसी क्षण पर सब कुछ निर्भर रहता है। वही क्षण या तो हमे तारता है या गर्त्त मे गिराता है। वह क्षण तारने वाला क्षण हो यही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। और जीवन मे इस लक्ष्य तक पहुँचने का जब तक सतत प्रयत्न न हो तब तक वह क्षण तारने वाला क्षण नही हो सकता। आजकल मेरा जीवन जिस ढग से चल रहा है, उससे मुझे जान पडता है कि वह अन्तिम क्षण तारने वाला क्षण हो इस ओर मेरा जीवन नही जा रहा है।

[नेपथ्य से एक गान की ध्वनि आती है, सब लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित होता है।]

गीत

जगत को छोड़ चलो उस ओर।

तम की निशा उदय मे अवसित, शान्ति गगन मे भोर।
महामोह-श्रम-थकित जगत यह, खोज रहा विश्रान्ति ;
अन्धकार मे भूल भटकती, मानस की विभ्रान्ति ;
युग युग बीत चले इस पथ का मिला न कोई छोर।
मानव-मन की आर्त्त हेर सुन द्रुत दौड़े भगवान ;
करुणा-द्रवित-हृदय से उद्‌गत अमर शान्ति आह्वान ;
शीतल करते दाह दुःखमय पीड़ा जग की घोर।

अशोक : (गीत पूर्ण होने पर) महेन्द्र और सघमित्रा का स्वर

जान पड़ता है ।

असंधिमित्रा : हाँ, महेन्द्र और संघमित्रा ही गा रहे थे ।

अशोक : सद्धम्म के प्रति बहुत आकर्षित हो गये जान पडते है।

असंधिमित्रा : क्या पूछते हो, तुम्हारे मन मे तो हिंसा से राज्य-विस्तार, आमोद-प्रमोद, विहार-यात्राएँ आदि ठीक है या अहिंसात्मक सद्धम्म ग्रहण करना, यह मानसिक संघर्ष ही चल रहा है, पर ये दोनो भाई-बहन तो कदाचित् भिक्षु-भिक्षुणी होने ही वाले है ।

कारुवाकी : जीजी बिलकुल ठीक कह रही है ।

[महेन्द्र और संघमित्रा का भिक्षु-भिक्षुणी के वेष में प्रवेश । महेन्द्र की अवस्था अब २० वर्ष की है और संघमित्रा की १८ वर्ष की । दोनों इस वेष में भी अत्यन्त सुन्दर दीख पड़ते हैं । उन्हें भिक्षु-भिक्षुणी के वेष में देख अशोक, असंधिमित्रा और कारुवाकी स्तब्ध-से रह जाते हैं ।]

महेन्द्र : (अशोक से) पिताजी, दोनो माताओ से और आपसे हम विदा लेने आये है।

संघमित्रा : हाँ, पिताजी, हमे विदा कीजिए ।

[किसी के मुख से कोई उत्तर नहीं निकलता । कुछ देर निस्तब्धता ।]

अशोक : (धीरे-धीरे) पर, यदि राजवश मे किसी को भिक्षु ही होना था तो मुझे, और भिक्षुणी ही होना था तो तुम्हारी माता असधिमित्रा को । महेन्द्र, तुम मगध के युवराज हो, इस अवस्था मे तुम्हारी यह वेशभूषा और सघमित्रा तम

भी भाई के साथ भिक्षुणी !

असंघिमित्रा : सद्धम्म के प्रति इन दोनों का आकर्षण होता जाता था, यह मैं जानती थी, नाथ, और मुझे भय भी था इनके भिक्षु-भिक्षुणी होने का। परन्तु यह इतने शीघ्र हो जायँगे, यह मै···(**कण्ठावरोध होने के कारण चुप हो जाती है।**)

कारुबाकी : यह अनर्थ, घोर अनर्थ !

[**कुछ देर निस्तब्धता**]

अशोक : (**कुछ विचारते हुए**) महेन्द्र, दस वर्ष पूर्व जब हम अवन्तिका मे थे और तुम अपनी ग्यारहवी वर्षगाँठ के दिन अपनी माता को और मुझे प्रणाम करने आये थे उस समय की एक वात तुम्हें स्मरण है ?

महेन्द्र : (**एक आसन्दी पर बैठते हुए**) कौनसी वात, पिताजी ? यदि आप उस बात का विपय वता दे, तो कदाचित् स्मरण हो आए ।

अशोक : सघमित्रा ने कहा था, तुमने अपने उस जन्म-दिन सौगन्ध खायी थी कि तुम पितृव्य चन्द्रगुप्त से भी बड़े चक्रवर्ती सम्राट् होगे, इसके लिए यदि तुम्हे रुधिर की सरिताएँ बहानी पडेगी तो उन्हें भी बहाओगे, तुम्हारी वीरता से रिपुओ के दल उसी प्रकार तितर-बितर हो जावेंगे जैसे रवि-रश्मियो से कुहरा। अपने पराक्रम से तुम हिमाद्रि के शृंगो को भी कँपाओगे, उदधि की ऊर्मियों को भी रोक दोगे।

असंधिमित्रा : और जिस प्रकार पितृव्य चन्द्रगुप्त ने यवन राजकुमारी हेलन से परिणय किया था उसी प्रकार केवल यवन राजकुमारी से ही नही पर जितनी भी अरिगणों की मनोहर राजकुमारियाँ मिलेगी उन सबसे परिणय करोगे ।

महेन्द्र: हाँ, स्मरण आ गया, पर वह बाल-विनोद था ।

संघमित्रा : (एक आसन्दी पर बठते हुए) मैंने भी बाल-विनोद मे ही आप लोगों से इनकी सौगन्ध की बाते कही थी ।

अशोक : (विचारते हुए) और तुम समझते हो कि अब तुम दोनो जो कुछ कर रहे हो वह परिपक्व विचारों के अनुसार ?

महेन्द्र : इसमे मुझे थोड़ा भी सन्देह नही है ।

संघमित्रा : थोड़ा भी नही ।

असंधिमित्रा : यह अवस्था और परिपक्व विचार !

कारुवाकी : मै तुम दोनों से अवस्था मे कही बड़ी हूँ, परन्तु मै भी यह नहीं मानती कि इस अवस्था में मेरे विचार परिपक्व हो सकते है ।

अशोक : महेन्द्र और संघमित्रा, अभी तुम्हारे आने के पहले मै तुम्हारी माताओं से कह रहा था कि मेरे मन में आजकल संघर्ष चल रहा है कि हिंसा से राज्य-विस्तार, आमोद-प्रमोद, विहार-यात्राएँ आदि ठीक है या अहिंसात्मक सद्धम्म ग्रहण करना । मै स्वयं किसी निर्णय पर पहुँचने मे असमर्थ हूँ और तुम दोनों भिक्षु-भिक्षुणी होकर आगये ।

महेन्द्र : पिताजी, मुझसे भी कम अवस्था के व्यक्ति भिक्षु हुए है।

संघमित्रा : और मुझसे भी कम अवस्था की ललनाएँ भिक्षुणी।

असधिमित्रा : इस प्रकार भिक्षु-भिक्षुणी होना कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है।

कारुवाकी : अवश्य।

अशोक : तुम्हारी माताएँ सर्वथा ठीक कहती हैं।

महेन्द्र : परन्तु, सद्धम्म मे भिक्षु-भिक्षुणी होने के लिए आयु का कोई प्रतिबन्ध नही है।

संघमित्रा : यदि युवावस्था मे भिक्षु-भिक्षुणी होना वर्जित माना जाता तो क्या भगवान् तथागत् भिक्षु-भिक्षुणी होने के लिए आयु का प्रतिबन्ध न कर देते।

[कुणाल का प्रवेश। कुणाल लगभग पाँच वर्ष का गौर वर्ण का अत्यन्त सुन्दर बालक है। उसकी आँखों में एक अद्भुत प्रकार का सौन्दर्य है। वह सुनहरी काम के कौशेय वस्त्र का कञ्चुक पहने है जो उसकी पिण्डलियो तक लम्बा है। उसके अंगों पर रत्न-जटित आभूषण हैं। सिर खुला हुआ है। उस पर काले बाल लहरा रहे हैं।]

कुणाल : **(महेन्द्र को ध्यान से देखते हुए)** दादा, तुम्हारे बाल कहाँ गये ? **(उसी प्रकार ध्यान से सघमित्रा को देखते हुए)** और जीजी तुम भी मुण्डी हो गयी ? कैसे कपड़े पहने हो

दोनो ही, अशोकाराम के भिक्खु-भिक्खुणियो के से ।

(अशोक की गोद में बैठता है ।)

[तीवर का प्रवेश । वह कुणाल से भी एकाध वर्ष छोटा जान पड़ता है । तीवर भी सुन्दर है परन्तु कुणाल का और उसका कोई मिलान नही हो सकता । उसकी वेश-भषा कुणाल के ही सदृश है । कुणाल तीवर को देखकर अशोक की गोद से उतर दौड़कर तीवर के पास जाता है।]

कुणाल : (दाहिने हाथ की तर्जनी से महेन्द्र और संघमित्रा की ओर सकेत कर) तीवर, पहचानो तो इन दोनों को ।

तीवर : (महेन्द्र और सघमित्रा को घूरते हुए) दादा और जीजी ही हैं न !

कुणाल : मुझे तो इन्हे देखकर डर लगता है ।

[दोनो आकर कुणाल अशोक की गोद में और तीवर असधिमित्रा की गोद में बैठ जाते हैं]

महेन्द्र : (हाथ फैलाकर कुणाल से) आओ, इधर आओ, कुणाल ।

संघमित्रा : (हाथ फैलाकर तीवर से) और तू इधर आ, तीवर ।

कुणाल : नही, नही । मै न आऊँगा । पहले तुम फिर से अपने बाल बढालो, मेरे जैसे कपडे पहन लो तब आऊँगा ।

[तीवर कुछ बोलता तो नहीं है पर संघमित्रा के पास नही जाता ।]

अशोक : (करुण स्वर में) ओह !

[असंधिमित्रा और कारुबाकी के नेत्रों से टपाटप आंसू गिरते हैं ।]

दूसरा दृश्य

स्थान . पाटलिपुत्र के बाहर एक विशाल उद्यान का एक भाग

समय : मध्याह्न के निकट

[उद्यान का कुछ भाग दिखायी देता है। पीछे की ओर उद्यान के कोट की ऊँची भित्ति है। उसके निकट वकुल के ऊँचे वृक्षों की पंक्ति है। वृक्ष इतने ऊँचे और घने है कि वृक्षों के बीच-बीच से ही कहीं-कहीं भित्ति दिखायी पड़ती है। इधर-उधर आम के वृक्षों की अनेक कुन्जें हैं। आम के वृक्षों की शाखाएँ गोल हो होकर भूमि तक पहुँच गयी है। आम्र-वृक्ष मौरों से लदे हुए हैं। इन ऊँचे वृक्षो के अतिरिक्त पुष्पों की अनेक क्यारियाँ दिखायी पड़ती हैं, जिनमें चैती, गुलाव और गेंदा खूब फूला हुआ है। बीच में एक अष्टदल कमल के आकार का बड़ा भारी कुण्ड है, जिसमें कमल खिले हैं। इस कुण्ड के जल में टेसू के फूलों का पीतरंग घोला गया है। आम के मौरो, खिले हुए गुलाव, गेंदे और कमलों के कारण उद्यान में वसत के वैभव का प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। उद्यान नर-नारी, बालको आदि से भरा हुआ है। ये सभी वसती रंग के कपड़े पहने हैं। कुण्ड के निकट ही एक बहुत बड़ा नर-नारियों का समूह अनेक मृदग, ढप और झाँझें बजाते हुए होली गा रहा है। इधर-उधर कुछ लोग पिच-कारियों में कुण्ड से रग भर पिचकारियाँ चला रहे है और कुछ गुलाल उड़ा रहे हैं।]

गीत

कुसुमित जग अंग-अग नव विकास छाया।
सौरभ, मकरन्द-मदिर, मलय पवन लाया।
कलिका की हृदय ग्रन्थि खोल सुरभि डोली।
पिक की पञ्चम-पुकार बोल उठी होली।
कुम-कुम, केसर फुहार, लख, गुलाल झोली।
सस्मित, सोत्कम्प खिली, पुलक, प्रकृति भोली।
मध्यम मे मुरज थाप, बीन मधुर बोली।
राग मे अनुराग मुखर, गुंजित अलि-टोली।

[गीत पूर्ण होते-होते अशोक, असंधिमित्रा, कारुवाकी, विगताशोक, कुणाल, तीवर, राधागुप्त, अनेक राजपुत्रों, राजुकों, युक्तों आदि के साथ आता है। यह समुदाय भी बसंती रंग के वस्त्र पहने है। इनके आभूषण आज जड़ाऊ न होकर स्वर्ण के है। इनके आने पर जोर का जयघोष होता है। उद्यान का सारा जनसमुदाय दौड़कर इनके चारों ओर इकट्ठा हो जाता है। जोर की पिचकारियाँ और गुलाल की फेंटें चलती है। सभी आगन्तुक रंग से सराबोर हो जाते है। गुलाल से सारे वायुमण्डल में लाल कुहरा-सा छा जाता है। थोड़ी देर में सब लोग बैठते है।]

अशोक : तो इस वर्ष भी आपने होली की इस विहार यात्रा में खूब आनन्द मनाया।

एक व्यक्ति : महाराज के राज्य मे किस बात की कमी है !

सारा जनसमुदाय : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

अशोक : (गाने वाले समुदाय से) हाँ, एक धमार और हो जाय।

कुछ व्यक्ति : (एक साथ) जैसी आज्ञा।

[फिर से मृदंग, ढप और झाँझें बजकर गान आरम्भ होता है।]

गीत

री ! मंजरि ! निज उर बन्धन खोल,
नव-मकरन्द भेंट कर अलि को जीवन मे मधु घोल।
सरस गात्र मे मादकता मृदु, नयनो मे आह्वान,
शिशुता दूर गयी अब, सजनी ! फिर भी तू अनजान।
परिमल-सुरभित, पल्लव अञ्चल छूता मलय समीर;
राग रग लख चौंक चकित सा मानस मुग्ध अधीर,
उन्मद-मधु-माधव की उडती कुम-कुम, केसर, रोली।
अवनी से अम्बर तक छायी, लाल लाल सखि ! होली।

[गान पूर्ण होते-होते नेपथ्य में घण्टा बजता है। सबका ध्यान नेपथ्य की ओर आकर्षित होता है।]

राधागुप्त : मध्याह्न के भोजन का घण्टा है।

[जनसमुदाय धीरे-धीरे जाता है। अशोक जिस समुदाय के साथ आया है वह समुदाय तथा कुछ और लोग रह जाते हैं।]

अशोक : (दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए राधागुप्त से) अग्रामात्य, होली की इस आनन्दमयी विहार यात्रा में मध्याह्न के भोजन के लिए कितने जीवो का वध हुआ होगा ?

राधागुप्त : गिनती तो कठिन है, श्रीमान्, परन्तु नित्य ही जब साठ हजार ब्राह्मणों और श्रवणों को राजभवन से मास दिया जाता है तब होली की इस विहार यात्रा मे तो ब्राह्मणो और श्रवणो के अतिरिक्त भी सहस्रों वरन् लक्षो नागरिक एकत्रित हुए है ।

अशोक : मानवो की विहार यात्रा, मानवो की क्रीड़ा, और इसके लिए अन्य जीवो का यह सहार ! (कुछ रुककर) ब्राह्मणो और श्रवणो का नित्य का भोजन और इन विहार यात्राओ का भोजन क्या निरामिप नही हो सकता ?

राधागुप्त : परम्परा तो इसी प्रकार की चली आ रही है ।

असंधिमित्रा : बुरी परिपाटी मे भी परिवर्तन नही हो सकता ?

कारुवाकी : मै तो समझती हूँ अवश्य हो सकता है । क्यों, अग्रामात्य ?

राधागुप्त : क्या कहूँ ?

अशोक : और अब तो शीघ्र ही कलिग पर भी मगध-सेना का आक्रमण होने वाला है । उसमे मानव-सहार भी होगा ।

राधागुप्त : आपने राज्याभिषेक के दिन कहा ही था कि भारत के जो भाग अभी भी साम्राज्य के बाहर है, वे साम्राज्य मे मिलाये जायँगे । यदि वे स्वय सम्मिलित हुए तो आपको हर्ष होगा, पर यदि वे स्वयं न मिले तो बल-प्रयोग करके भी आप उन्हे सम्मिलित करेगे, क्योकि भारत ही नहीं पर समस्त जम्बूद्वीप का उत्कर्ष आप भारतीय साम्राज्य की एकता पर मानते हैं ।

अशोक : हाँ, मुझे स्मरण है अपनी राज्याभिषेक की उस घोषणा का। कलिंग पर आक्रमण मेरी उसी घोषणा के अनुसार मेरी अनुमति से ही हो रहा है। पर अब मेरे मन मे सन्देह होने लगा है कि मेरी वह घोषणा तथा उस घोषणा के आधार पर ये आक्रमण एवं नित्यप्रति ब्राह्मणो और श्रवणों के तथा इन विहार यात्राओ के भोजनो मे यह हिंसा कहाँ तक उचित है।

[नेपथ्य में फिर गान की ध्वनि सुन पड़ती है। सबका ध्यान नेपथ्य की ओर जाता है।]

गीत

रसने ! रस की कर पहचान।
षट्-रस-मय व्यञ्जन भोजन का यह नवीन विज्ञान।
अज, मयूर, मृग मांस सुगन्धित वर्धित करता ओज।
तन की पुष्टि, हृष्टि मानस की करता आमिष भोज।
देव सु दुर्लभ स्वादु खाद्य यह गुण रस सौख्य निधान।

अशोक : (गीत पूर्ण होते-होते) लीजिए, भिन्न-भिन्न जीवो के मांस के सुस्वाद पर भी काव्य रचना हो गयी ! कहाँ ली के उन गीतो का मधुर रस और कहाँ इस गीत से उत्पन्न वीभत्स रस !

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान . कलिंग देश में रण-क्षेत्र

समय : सन्ध्या

[क्षितिज से लगा हुआ मैदान दीखता है। पश्चिम में सूर्यास्त हो रहा है, यह क्षितिज के निकट आकाश की लालिमा से ज्ञात होता है। मैदान में हाथियों, घोड़ों और मानवों के कटे हुए अंग, रथों के टूटे हुए भाग आदि फैले हुए हैं। घायल सैनिक भी पड़े हैं।* घोर युद्ध हो रहा है। मगध और कलिंग के पदाति सेना के सैनिक युद्ध कर रहे हैं। सैनिक दो पक्षों के हैं, यह उनके पृथक्-पृथक् रंग के वस्त्रों से ज्ञात होता है। सभी सैनिक वक्षस्थल पर कवच और सिर पर शिरस्त्राण धारण किये हैं। बाण, शल्य और खड्ग चल रहे हैं। हाथियों की चिग्घाड़ों, घोड़ों की हिनहिनाहट, सैनिकों के रणघोष और घायलों के आर्तनाद से सारा वायुमण्डल व्याप्त है। कुछ देर पश्चात् एक ओर से कुछ सैनिकों के साथ अशोक और दूसरी ओर से कुछ सैनिकों के संग कलिंग नरेश का प्रवेश। अशोक, कलिंग नरेश और दोनों पक्षों के योद्धा कवच और शिरस्त्राण

---

*यहाँ एक सफेद चादर डालकर हाथियो, घोड़ो, रथो आदि के युद्ध का दृश्य सिनेमा द्वारा दिखाया जा सकता है।

धारण किये हैं। अशोक तथा कलिंग नरेश के कवच और शिर-स्त्राण के लोह पर सुवर्ण लगा है। दोनों दलों में भीषण रण होता है। धीरे-धीरे कलिंग सेना परास्त होती है और कलिंग नरेश अशोक के सामने शस्त्र डालता है। युद्ध बन्द होता है।]

कलिंग नरेश : मगधपति, मैं पराजय स्वीकार करता हूँ, पर युद्ध करके मैंने कोई भूल की है, यह मुझे स्वीकृत नही है।

अशोक : तुम पराजय स्वीकार करते हो यही यथेष्ट है। किसने भूल की है और किसने सही बात, यह विवाद निरर्थक है।

कलिंग नरेश : पराजित व्यक्ति विवाद का अधिकारी नहीं होता अतः मैं आपसे विवाद नही करना चाहता, पर इतना कहे विना मुझ से नही रहा जाता कि यदि देश-भक्ति, स्वाधीनता-प्रेम और अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए सब कुछ न्योछावर करने का साहस प्रशंसनीय है तो मैंने भी कोई भूल नही की। जब तक कलिंग में थोड़ी भी शक्ति थी, सामर्थ्य थी, तब तक उसने आपकी महान् और असीम बलशाली सेना की भी परवाह न कर वीरोचित रीति से आपका सामना किया। छोटे से कलिंग देश के लिए, अपनी स्वाधीनता की रक्षा के हेतु, मगध सम्राट् का इस प्रकार सामना अत्यन्त गौरव का विषय है। इस छोटे से कलिंग ने स्वाधीनता के इस महान् यज्ञ में सहस्रों नहीं, लाखो वीर पुत्रो की आहुति दी है। उसका परास्त होना एक स्वाभाविक बात थी। हमने घुटने टेके पर सब कुछ कर चुकने के पश्चात्। स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में

कलिंग का यह युद्ध मानव इतिहास मे एक विशिष्ट स्थान रक्खेगा। कलिग की स्वाधीनता का जो अपहरण हुआ है और इस काण्ड मे जो मानव-संहार, इसका दोषी कौन है यह इतिहासज्ञों का विषय होगा।

यवनिका

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान : पाटलिपुत्र के राजभवन के गर्भागार मे अशोक का कक्ष

समय : रात्रि का तीसरा पहर

[कक्ष लगभग वैसा ही है, जैसा दूसरे अक के पहले दृश्य का कक्ष था। शैय्या पर अशोक लेटा हुआ है। शैय्या के उभय ओर असधिमित्रा और कारुवाकी आसन्दियों पर बैठी हुई एक गीत गा रही है।]

गीत

दिवस का श्रम मौन निद्रा लीन।
पलक-पुट मे अचल वन्दी चपल-लोचन-मीन।
ज्वलित दीपक लालसा का मन्द कर री ! क्लान्ति।
शिथिल-कर-उपधान-आश्रय, दे अलस विश्रान्ति।
कामना का कमल मुद्रित मुग्ध मायाधीन।
यामिनी के श्याम पट मे स्वप्न का सभार।
चेतना, उन्निद्र झुक-झुक, झाँकती उस पार।
चाँद की कोमल कला भी झीमती सी क्षीण।

[गीत पूर्ण होने पर अशोक उठकर बैठ जाता है।]

अशोक : नही, नही आयगी नीद चाहे तुम लोग कितना भी प्रयत्न करो। बुलाओ तो अग्रामात्य को !

असंधिमित्रा : पर रात्रि का तीसरा प्रहर होगा, नाथ ! इस समय तुम अग्रामात्य को बुलाना चाहते हो ?

अशोक : हाँ, अभी तत्काल बुलाना चाहता हूँ। मैने कुछ निर्णय किये है और उन्हे तत्काल कार्यरूप मे परिणत करना है।

कारुवाकी : जैसी आपकी इच्छा, मै अभी प्रतिहारी को भेजती हूँ।

[कारुवाकी का प्रस्थान। अशोक एक दीर्घ निःश्वास छोड़ता है।]

असंधिमित्रा : तुम्हारी तो विचित्र दशा हो गयी है। न कुछ खाते हो और न सोते, इस प्रकार कैसे काम चलेगा ?

[कारुवाकी का प्रवेश। वह फिर आसन्दी पर बैठ जाती है।]

अशोक : मै स्वयं मानता हूँ, इस प्रकार काम नही चल सकता।

असंधिमित्रा : तब ?

अशोक : तब क्या किया जाय, देवि, यही तो निर्णय करना है। इसीलिए रात्रि के इस प्रहर मे भी मैने अग्रामात्य को बुलाया है। (कुछ रुककर) सुनो, तुम दोनो सुनो ! कलिंग के युद्ध मे जो कुछ हुआ है वह मुझे पलमात्र को भी चैन नही लेने देता। आहत सैनिको के शव मेरे नेत्रों के सामने घूमते रहते है, क्षण मात्र को भी दृष्टि से ओझल नहीं होते। घायलो का आर्त्तनाद मेरे कानो मे गूँजता रहता है, एक निमिष मात्र को भी वह स्वर बन्द नही होता ! और · और मृतको की संख्या थोड़ी नही थी, कलिंग के सैनिको मे ही वह पहुँची थी एक लक्ष के ऊपर। घायलों

की सख्या इससे कई गुनी अधिक थी । डेढ लक्ष के ऊपर कलिग सैनिक कैद करके दास वनाये गये थे। न जाने कितने पुरो और ग्रामो मे अग्नि लगी थी और वहाँ न जाने कितना जनसमुदाय भस्म हुआ और जला था । फिर इन मृतकों ने अपने कुटुम्वियो विशेषकर अपनी पत्नियो और माताओं को मृतको से अधिक मृतक वना दिया था। उनका विलाप कानो के परदे फाडता था ; वह असहनीय, सर्वथा असहनीय था । कलिंग देश की इन सहस्रो, लाखो वहनो के माँग के सिंदूर, ललाट की टिकली, नाक की नथनी, ग्रीवा का मंगलसूत्र, हाथ की चूड़ियें, हथेली की मेहदी, पैर की महावर और पैर की उँगलियो की विछिया समस्त सुहाग चिन्हो को मैने मिटाया है। कितनी माताओ को मैंने पुत्र-हीन वनाया है। चाहे कितनी और कैसी ही वीर-गाथाओ की रचना की जाय, परन्तु कम-से-कम माता की समझ मे यह वात वैठ ही नही सकती कि इस प्रकार के युद्धो मे कटने और मर मिटने के लिए उन्हे पुत्रो की उत्पत्ति क्यों करनी चाहिए। इन मृतको के वच्चे अनाथ, सुना, अनाथ, नही नही, भूखे-प्यासे कुत्ते-विल्लियो के सदृश विलविलाते फिरते थे। रणभूमि का दृश्य ही भयानक और वीभत्स न था पर कलिग के पुरो और ग्रामो के, जहाँ युद्ध न हुआ था, वहाँ के, दृश्य तो रणभूमि से भी कही अधिक भयानक और वीभत्स थे। फिर हमारी मगध सेना मे जो लक्षों मरे और घायल हुए वे इनसे पृथक् है ।

असंधिमित्रा : कलिंग-युद्ध के पश्चात् कितनी बार तुम यह वर्णन कर चुके हो।

कारुवाकी : हाँ, कितनी बार।

अशोक : इसलिए, कि कलिंग-युद्ध के पश्चात् उस भीषण नर-संहार के विकराल दृश्यों के अतिरिक्त मुझे और कुछ दिखायी ही नहीं देता। उस कारुणिक हृदय को हिला देने वाले आर्त्त-नाद के अतिरिक्त और कुछ सुनायी नहीं देता। हम दूसरों के दुःखों की नींव पर अपने सुख के भवन का निर्माण नहीं कर सकते। इस युद्ध में न जाने कितने पुरुषों के पौरुष रूपी पुष्प कुम्हलाकर झड़ गये हैं। न जाने कितनी महिलाओं की मन्द मुस्कान सदा के लिए समाप्त हो गयी है। इस युद्ध से हमारी शारीरिक और मानसिक अवस्था इस प्रकार झकझोरी जाकर विच्छृंखल हो गयी है कि जान पड़ता है, कि सारा सामाजिक जीवन जड़ से उखड़ गया है। हमारे पापों का बोझ नयी पीढ़ी की पौध पर ऐसा पड़ने वाला है कि वह पीढ़ी उस बोझ के वज्रपात से तहस-नहस होकर नष्ट-भ्रष्ट होने से कहाँ तक बच सकेगी यह संदिग्ध है।

असंधिमित्रा : पर, जो तुम्हारी यही दशा रही तो तुम तो विक्षिप्त हो जाओगे।

कारुवाकी : अवश्य।

अशोक : मुझे भी ऐसा ही ज्ञात होता है, और देखो, इस समस्त हिंसात्मक दारुण कांड का उत्तरदायित्व मुझ पर है। जब कलिंग का वह रोमांचकारी संहार हो चुका और कलिंग

नरेश ने घुटने टेके, उस समय उन्होने कहा था इस काण्ड मे जो मानव-सहार हुआ है, उसका दोषी कौन है, यह इतिहासज्ञो का विषय होगा। ठीक ठीक · सर्वथा ठीक कहा था कलिगाधिपति ने। उन्होने और भी कुछ कहा था।

असंधिमित्रा : क्या ?

अशोक : उन्होने कहा था कि देश-भक्ति, स्वाधीनता-प्रेम और अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए सब कुछ न्यौछावर करने का साहस कलिंग ने दिखाया। जब तक कलिगवासियों मे थोड़ी भी शक्ति, थोडा भी सामर्थ्य रहा, तब तक उसने मगध की महान् और असीम बलशाली सेना की भी परवाह न की और वीरोचित रीति से उसका सामना किया। छोटे से कलिंग देश के लिए, उसकी स्वाधीनता की रक्षा हेतु मगध के राजा का इस प्रकार सामना उसके लिए अत्यन्त गौरव का विषय है। कलिंग नरेश का एक-एक शब्द, उसका एक-एक अक्षर, उसकी एक-एक मात्रा ठीक है। (दीर्घ निःश्वास ले उसे छोड़ते हुए) हमने कलिंग पर आक्रमण किया। हम आततायी है, कलिंग नही।

असंधिमित्रा : पर, तुम तो सदा कहा करते थे कि 'वीरभोग्या वसुन्धरा'।

कारुवाकी : हाँ, मैने भी न जाने कितनी बार आपके मुँह से यह उक्ति सुनी है।

अशोक : पर अब वीर की सच्ची परिभाषा क्या है, इस संबंध

मे मेरे मन मे द्वन्द्व उत्पन्न हो गया है ।

असंधिमित्रा : वीर की परिभाषा ! यह भी द्वन्द्व का विषय !

कारुवाकी : वीर की परिभाषा मे तो द्वन्द्व न होना चाहिए ।

अशोक : नही, हमारे देश की सस्कृति मे भी वीरों को कई परिभाषाएँ है ।

असंधिमित्रा : कई परिभाषाएँ ?

कारुवाकी : जैसे ?

अशोक : जैसे, धर्मवीर, दानवीर, युद्धवीर आदि । और जहाँ तक युद्धवीर का संवध है, मेरा यह मत हो गया है कि आक्रमणकारी को युद्धवीर न कह आततायी कहना चाहिए । ऐसे आतताइयो के हृदय शुष्क होते-होते पाषाण-वत् ' नही, नही पाषाणवत् नही पाषाण ही'' 'नही नहीं, पाषाण नही, उससे भी कठोर'' कठोरतम, निर्मम और निष्प्राण हो जाते है ।

असंधिमित्रा : परन्तु, समाज तो इन्हे वीर ही मानता है ।

अशोक : समाज ! समाज के अधिकाश व्यक्ति विचार की शक्ति नही रखते । वहुत समय से जो सुनते आते है, वही ठीक है, यह मानते है, क्योकि किसी विशिष्ट समय की आवश्यक-ताओ के कारण जो कुछ अतीत मे होता रहा है, उससे समाज का एक प्रकार का रूप बन जाता है, उन आव-श्यकताओ के न रहने पर भी समाज के उस ढाँचे को परि-वर्तित होने मे समय लगता है । जिस समय मत्स्य न्याय के बिना जीवित नही रहा जा सकता था उस समय के

समाज मे आक्रमणकारी को भी युद्धवीर कहा जाता होगा। परन्तु, अब युद्धवीर यदि किसी को कहा जा सकता है तो अपनी रक्षा में युद्ध करने वाले को। कलिंग-युद्ध में मगध के योद्धा युद्धवीर न होकर आततायी थे, यदि युद्धवीर कोई थे तो कलिंग के साहसी सैनिक। फिर एक बात और है।

असंधिमित्रा : कौनसी ?

अशोक : न्यायप्रिय होना युद्धवीर होने की अपेक्षा कही कठिन है।

असंधिमित्रा : परन्तु, प्रिय, राज्याभिषेक के दिवस तुमने कहा था कि केवल भारत का ही नही पर समूचे जम्बूद्वीप का भावी उत्कर्ष तुम भारतीय साम्राज्य की एकता पर मानते हो।

अशोक : मेरे उस मत मे अभी भी कोई परिवर्तन नही हुआ है।

असंधिमित्रा : तो कलिंग युद्ध भारतीय एकता के अनुष्ठान का ही एक विधान था।

कारुवाकी : हाँ, बिना इस प्रकार के युद्धो के भारतीय एकता किस प्रकार हो सकती है ?

अशोक : प्रेम से, युद्ध से नही। युद्ध से जिस एकता का प्रयत्न किया जाता है, वह एकता कभी स्थायी नही रह सकती। युद्ध मे जो नर-सहार होता है, उसके जो परिणाम निकलते है, उससे विजेताओ और विजितो के बीच रुधिर की नदियाँ ही नही बहने लगती, रुधिर के तूफानी समुद्रों का निर्माण हो जाता है जिसमे प्रेम और विश्वास डूब जाते

हैं। एक दूसरे के प्रति घृणा और रोष के ज्वालामुखी पर्वत बन जाते है। हर क्षण उनके विस्फोट की आशका बनी रहती है। और वह विस्फोट कभी-न-कभी होकर रहता है। मै जो यह कहा करता था कि मै महान् कार्य करूँगा उसके स्थान पर अब मै यह सोचने लगा हूँ कि मै अच्छा कार्य करूँगा, महान् कार्य से अच्छा कार्य कही श्रेष्ठ है और मेरा यह निर्णय किसने कराया है, जानती हो ?

असंधिमित्रा : किसने ?

कारुवाकी : हाँ, बताइए, किसने ?

अशोक : मेरे स्वय के अन्तःकरण ने। मुझे अनुभव हुआ है कि हर मानव के अन्तःकरण की नीव मे एक प्रकार का न्याय रहता है, जिसके द्वारा वह अपनी और अन्यो की वृत्तियों की परख किया करता है; और इस परख मे उसे क्या अच्छा है और क्या बुरा, इसका पता लग जाता है। अच्छे और बुरे का पता लगते ही क्या अच्छा है और क्या बुरा, अन्तःकरण इसकी घोषणा करता है; जिस घोषणा को मैं अन्तरात्मा की घोषणा कहता हूँ। हम प्रायः इसकी अवहेलना किया करते है और यह अवहेलना ही हमारे दुःखों की जड़ है॥ मेरा भावी कार्यक्रम इसी घोषणा ने निर्धारित कराया है। और एक बात और।

असंधिमित्रा : क्या ?

अशोक : दार्शनिक तर्क प्रायः अविश्वास की ओर ले जाता है और अन्ध श्रद्धा धर्मान्धता की ओर। इन दोनों की अति

को बचाकर जिस पथ पर चलने के लिए अन्तरात्मा को यह घोषणा प्रेरित करे उस पथ को सत्य-पथ मान उसी पर चलना चाहिए। इस यात्रा में न गर्व का स्थान होना चाहिए और न हीनता की भावना का। किसी प्रकार की निर्बलता तो आनी ही नही चाहिए। इस संसार मे इस प्रकार के कर्त्तव्य-पथ पर चलना ही जीवन को सार्थक करना है। जब हम इस पर चलते हुए अपने आपको विस्मृत कर देते है तभी यथार्थ मे हम अपने आपका सच्चा स्मरण करते हैं। जीवन यथार्थ मे अपने आप मे कुछ भी नही है। उसका मूल्य इस बात पर निर्भर है कि हम उसका कैसा उपयोग करते है। यदि हम अपने सूर्य का मिलान अन्य सूर्यो से करे तो हमारा सूर्य तुच्छ दिखायी पडता है। यदि हम अपनी पृथ्वी का मिलान अपने सूर्य से करें तो हमारी पृथ्वी तुच्छ दीख पडती है। इस पृथ्वी पर न जाने कितने मानव, महत्त्वशाली मानव आये और चले गये और न जाने कितने आयेंगे और चले जायेंगे। अतः जैसा मैंने अभी कहा जीवन को क्या महत्त्व है; महत्त्व है इस बात को कि आप इस जीवन मे क्या करके जाते हैं। हमारा कर्त्तव्य अन्तरात्मा की घोषणा के अनुसार आदर्शो को स्थिर कर उन्ही पर विचार करना और उन्ही के स्वप्न देखना है। इन विचारो और स्वप्नो को कार्यरूप में परिणित करने के लिए संकल्प करना और उन सकल्पो को प्रत्यक्ष रूप देना है। जो यह करता है और इसके लिए

निरन्तर श्रम करता रहता है तथा अभीष्ट की सिद्धि के लिए यदि आवश्यकता पडे तो मरने के लिए भी तैयार रहता है, वही सच्चा मानव है। किसी भी अभीष्टकी सिद्धि तब होती है, जब उस सिद्धि के लिए अन्त, सर्वथा अन्त तक जाने का साहस हो और इसके लिए कभी भी रिक्त न होने वाले धैर्य का कोष। और मानव का कोई भी अभीष्ट पैशाचिक अभीष्ट ही रहता यदि उस अभीष्ट की नीव दया की नीव न रहती।

[राधागुप्त का प्रवेश]

राधागुप्त : (आगे बढ़कर) आज्ञा के अनुसार उपस्थित हूँ, श्रीमान् !

अशोक : (राधागुप्त की ओर देखते हुए) बैठिए, अग्रामात्य।

[राधागुप्त पर्यंक के समीप एक आसन्दी पर बैठ जाता है।]

अशोक : अग्रामात्य, आजकल की मेरी मनोदशा आपसे छिपी नही है, इसीलिए आज इस समय मैंने आपको कष्ट दिया।

राधागुप्त : महाराज की मनोदशा से मैं ही क्या, आजकल सारा साम्राज्य परिचित हो गया है। हम आपके समीपवर्ती चिंतित भी कम नही है, परतु ' परंतु (चुप रह जाता है।)

अशोक : परंतु, पर ही आप रुक क्यो गये, अग्रामात्य ?

राधागुप्त : इसलिए, श्रीमान्, कि इस मनोदशा के सुधारने के लिए हमे कोई मार्ग नही सूझ पड़ रहा है। साम्राज्य के समस्त कार्य निश्चित निर्धारित नीति के अनुसार चल रहे

हैं, व्यवस्था मे कही कोई व्यतिक्रम नही । सिंहासनासीन होने के समय जो घोषणाएँ आपने की थी उन्हे अक्षरशः पालन करने का प्रयत्न किया जा रहा है । उत्तरापथ से दक्षिणापथ तक समूचे भारत मे पूर्ण शान्ति स्थापित है और यदि इस शान्ति को भग्न करने प्रत्यक्ष मे या परोक्ष मे, जान मे या अनजान मे किसी प्रयत्न होने की जरा फुस-फुसाहट भी सुन पडती है तो उसका तत्काल दमन कर दिया जाता है। सारी प्रजा स्वर्ग-सुख का अनुभव कर रही है। कही दुःख-दारिद्रय का वास नही । सहस्रो ब्राह्मण और श्रवण नित्य भोजन पा रहे हैं। जैसी विहार-यात्राएँ आपके सिंहासनासीन होने के पश्चात् हुई वैसी भारत के इतिहास मे कभी नही हुई थी। राजराजेश्वर सम्राट् चन्द्र-गुप्त के पश्चात् राज्य-विस्तार का कोई प्रयास नही हुआ था, हाल ही मे कलिंग-विजय का एक सफल प्रयत्न हुआ और मगध की सेना ने शत्रुओ के जिस प्रकार दाँत खट्टे किये उसके कारण भारत के जो विभाग अभी तक मौर्य साम्राज्य मे सम्मिलित नही है, वे इतने आशंकित और भयभीत हो गये है कि मुझे विश्वास है कि स्वयं सम्मिलित होने के लिए आवेदन-पत्र भेजेगे। इस युद्ध के कारण उन विदेशियो तक के छक्के छूट गये है जिनसे इस संग्राम का कोई सरोकार न था। आपने राज्याभिषेक के दिन जो यह कहा था कि किसी भी विदेशी ने भारत पर यदि भूल से भी लालच भरी कोई कुदृष्टि उठायी तो उस पर भारत का

तत्काल आक्रमण होगा और वह मटियामेट कर दिया जायगा। उस प्रकार के किसी आक्रमण की कोई आवश्यकता ही न पडेगी। इतने·· इतने पर भी यदि श्रीमान् की ऐसी मनोदशा है, यदि आप सुखी न होकर दुखी हैं, तो··तो (चुप हो जाता है।)

अशोक : अग्रामात्य, मैने आपकी सभी बातें ध्यान से सुनी। आपने इस समय भारतीय साम्राज्य का जो स्वरूप, उसका जो चित्र मेरे सामने प्रस्तुत किया, उस चित्र मे यदि कहीं प्रकाश है तो कही कालिमा भी।

राधागुप्त : (कुछ आश्चर्य से) कालिमा तो मुझे कही दृष्टिगोचर नही होती, श्रीमान्।

अशोक : इसलिए कि आपके और मेरे आदर्शो तथा उन आदर्शों पर पहुँचने के लिए जिन साधनो का उपयोग होना चाहिए उनमे अन्तर पड़ गया है।

राधागुप्त : अर्थात् ?

अशोक : इस सम्बन्ध मे कभी कोई, और कभी कोई बात होती रही है, पर पूरी·बात अब तक नही हो पायी, क्योकि उन आदर्शो का तथा उन आदर्शो तक पहुँचने के लिए जिन साधनो को मै सोच रहा था, उनका अब तक कोई बहुत स्पष्ट रूप मेरे सामने भी नही था। आज वह हो पाया। इसीलिए मैने आपको ऐसे समय मे भी बुलाया।

राधागुप्त : हम लोग आज्ञानुगामी हैं। अब तक की आज्ञाओं का पालन किया है, भविष्य मे भी करेगे और यदि···

यदि (चुप हो जाता है।)

अशोक : यदि पर आप चुप हो गये, अग्रामात्य।

राधागुप्त : स्पष्ट तो कहना ही होगा, सम्राट्। यदि हम उन आज्ञाओं का पालन न कर सकेंगे तो सेवा में त्याग-पत्र प्रस्तुत कर देंगे।

अशोक : देखिए, अग्रामात्य, आपने जो यह कहा कि साम्राज्य के समस्त कार्य निर्धारित नीति के अनुसार चल रहे हैं, व्यवस्था में कहीं कोई व्यतिक्रम नहीं, सिंहासनासीन होने के समय जो घोषणाएँ मैंने की थी उनका अक्षरशः पालन करने का प्रयत्न किया जा रहा है, उत्तरापथ से दक्षिणापथ तक समूचे देश में शान्ति है, सारी प्रजा सुख का अनुभव कर रही है, सहस्रों ब्राह्मण और श्रवण नित्य भोजन पा रहे हैं, बड़ी सुन्दर विहार-यात्राएँ हो रही हैं; यह सब राज्य के इस समय के चित्र का प्रकाश वाला पहलू है।

राधागुप्त : और अन्धकार वाला पहलू, श्रीमान्?

अशोक : अन्धकार वाला पहलू है, शान्ति को भंग करने के प्रयत्नों का दमन, राज्य के विस्तार का प्रयत्न, कलिंग का गत युद्ध जिसने देश और विदेश में आपके कथनानुसार ही भय और आतंक को उत्पन्न किया है, वह।

राधागुप्त : तब···तब, श्रीमान्, शान्ति को भंग करने का प्रयत्न होने दिया जाय? राज्य का विस्तार कर जिस भारतीय एकता को आप केवल भारत ही नहीं पर

समूचे जम्बूद्वीप के भावी उत्कर्ष के लिए आवश्यक मानते थे यह विस्तार भी न किया जाय ?

अशोक : इन कार्यों के लिए मै अन्य साधनों का उपयोग करना चाहता हूँ ।

राधागुप्त : जैसे ?

अशोक : जैसे यदि कोई शान्ति भग करना चाहता है तो उसका शमन दमन से न कर प्रेम से करना चाहिए, राज्य का विस्तार हिंसा से न कर अहिंसा से करना चाहिए ।

राधागुप्त : शांति भग करने के प्रयत्नो का शमन दमन से नही ! राज्य विस्तार अहिंसा से ! यह कभी हो सकता है ?

असधिमित्रा : अब तक तो मानव इतिहास मे कभी नही हुआ ।

कारुवाक : कभी नही ।

अशोक : और कभी नही हुआ इसलिए कभी हो भी नहीं सकता, आप लोग ऐसा क्यो समझते हैं ? क्या मानव इतिहास का अंतिम पृष्ठ तक लिख डाला गया है ? जो भूत मे होता रहा है, उसी की पुनरावृत्ति क्या सदा भविष्य मे भी होती रहेगी ?

[कोई कुछ नही बोलता, कुछ देर निस्तब्धता ।]

अशोक : नही, नही, अग्रामात्य नही ; नही, रानियो, नहीं ; मै ऐसा निराशावादी नही हूँ । यदि हिंसा को ही हर बात का अंतिम निर्णायक रहना है तो संसार का भविष्य अत्यन्त अन्धकारमय है । हिसा से हिसा की उत्पत्ति होगी, और यह हिंसा निरन्तर बढ़ती जायगी । एक दिन

ऐसा आयगा जब इस हिंसा से सारी मानव-संस्कृति, सारी मानव-सभ्यता ही नही, मानव का ही नाश हो जायगा। अतः ससार के कार्यो मे, कम से कम सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना इस मानव के कार्यो मे, हिंसा का मैं कोई स्थान नहीं मानता। अहिंसा और प्रेम से मानव के कार्य चलने और निपटने चाहिएँ।

राधागुप्त : सद्धम्म का महाराज पर धीरे-धीरे प्रभाव बढ़ रहा था यह हमे ज्ञात था। चौरासी हजार विहारों का निर्माण इस प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण है। पर ' पर क्या अब श्रीमान् हम लोगो को छोडकर युवराज महेन्द्र और राजकुमारी संघमित्रा के सदृश भिक्षु होने जा रहे है ?

असंधिमित्रा : आजकल जिस प्रकार व्यथित रहने लगे हैं, न भोजन का ठिकाना है और न निद्रा का, उससे तो यही भास होता है।

कारुवाकी : जिस भय और आतक का आप साम्राज्य नही चाहते आपकी दशा के कारण हम लोग भी अत्यन्त भय-भीत और आतंकित हो गये हैं।

अशोक : (मुस्कराकर) कलिंग के युद्ध मे जो कुछ हुआ उसका प्रभाव तो मेरे मन पर इसी प्रकार पड़ा है कि मै भिक्षु हो जाऊँ, परन्तु, पितृव्य चन्द्रगुप्त द्वारा संस्थापित इस भारतीय साम्राज्य का क्या होगा यह प्रश्न भी मेरे सामने है। महेन्द्र भिक्षु हो गया, कुणाल और तीवर अल्पवयस्क हैं, इसलिए साम्राज्य के संचालन का जो उत्तरदायित्व मैंने

स्वीकार किया है उससे मै मुक्त नही हो सकता। सद्-धम्म ग्रहण करूँगा पर उपासक ही रहूँगा, भिक्षु श्रेणी मे नही जा सकूँगा और राज्य का संचालन करते हुए भी अब कलिंग-युद्ध के सदृश न मानव-संहार होगा न सहस्रो ब्राह्मणो तथा श्रवणो के नित्यप्रति के भोजन एवं विहार-यात्राओ के लिए अन्य जीवो का वध। मानव का सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ स्थान उसकी ज्ञान-शक्ति के कारण है। वह जिस प्रकार विचार कर सकता है अन्य प्राणी नही। विचार-परिवर्तन के लिए सद्धम्म के प्रचार मे साम्राज्य की सारी शक्ति को लगा दूँगा और अहिंसा के द्वारा लोक-कल्याण के कार्यों मे साम्राज्य का समस्त कोष। आदर्शो का निर्णय उतना कठिन नही जितना उन आदर्शो तक पहुँचने के लिए साधनो का निश्चित करना कठिन है। मैने अब आदर्शो के साथ उन आदर्शो तक पहुँचने के साधनो का भी निश्चय कर लिया है। फिर साध्य की अपेक्षा भी मै साधनों को अधिक महत्त्व देता हूँ, क्योकि साध्य सदा प्राप्य नहीं रहते, परन्तु उनकी प्राप्ति के प्रयत्नो मे जिन साधनो का उपयोग होता है, वे साधन मानव के मन और समाज को गढ़ते है। और एक बात और।

असंधिमित्रा : कौनसी ?

अशोक : विचार का कृति से कभी विच्छेद नही होना चाहिए। कृति दो प्रकार की होती है, एक समीपवर्ती और दूसरी दूरवर्ती। दूरवर्ती कृति के कारण निकटवर्ती कृति की अव-

हेलना न होनी चाहिए। साथ ही समीपवर्ती के कारण दूर-वर्ती के विचार-क्षेत्र पर पर्दा न पडना चाहिए। किसी वस्तु को श्रेष्ठ समझकर भी उस ओर न बढना और किसी वस्तु को निकृष्ट मानते हुए भी उससे चिपटे रहना मूढ़ता की पराकाष्ठा है। उस अज्ञान पर विजय प्राप्त करना जो सत् असत् के निर्णय मे झिझक उत्पन्न करता है, सच्ची विजय है, जिसकी प्राप्ति के पश्चात् किसी तरह का खेद नही रहता।

[**फिर कोई कुछ नहीं बोलता, कुछ देर निस्तब्धता।**]

अशोक : अग्रामात्य, मेरे कार्य की भावी नीति ऐसी नही है जिसके लिए आपको त्याग-पत्र देने की कोई आवश्यकता हो। इस नवीन-राज्य-प्रणाली मे भी मुझे आपके, अन्य साथियों के और समस्त प्रजा के उसी प्रकार के सहयोग की आवश्यकता है जिस प्रकार के सहयोग की आवश्यकता थी मौर्यवंश के गृह-कलह को शमन करने मे और अब तक के समस्त कार्यो मे। (कुछ रुककर) अग्रामात्य, मेरा मानसिक संघर्ष चरम सीमा को पहुँच चुका था, मुझे अब तक कोई स्पष्ट मार्ग नही सूझ पड़ रहा था। इस श्याम मेघ मे आज ही प्रकाश की एक किरण दृष्टिगोच हुई है। इस किरण के दृष्टिगोचर होते ही मुझे अनुभव होने लगा कि अच्छे उद्देश्य मन पर अच्छा प्रभाव न डालें यह हो ही नही सकता। आप शीघ्र से शीघ्र समस्त राजपुत्रो, राष्ट्रीयगणो, राजुको, युक्तो, नगर-व्यावहारिकों,

प्रदेष्ट्रियो, भिक्षुओ और नागरिकों आदि की एक वैसी ही सभा बुलवाइए जैसी मेरे राज्याभिषेक के समय बुलायी थी।

[नेपथ्य में उषःकाल की प्रार्थना का स्वर सुन पड़ता है।]

असंधिमित्रा : लीजिए, उषःकाल का समय हो गया, उषःकाल की प्रार्थना आरम्भ हो गयी है।

अशोक : मेरी यह नवीन नीति भी उषःकाल के सदृश संसार के उत्कर्ष का सुन्दर और सुनहरा प्रकाश लाये।

[प्रार्थना के कारण सब लोग खड़े हो जाते हैं।]

गीत

हे विशुद्ध ! हो प्रबुद्ध दूर करो अन्धकार।
महानील अन्तरिक्ष, खोलता आलोक द्वार।
नवप्रकाश-किरण चपल,
अवनी पर उतर विकल,
जगती का जड़ शरीर,
परस मृदुल कर अधीर,
करती जीवन संचार
रजनी-तम-गात्र श्याम,
धूमिल घन रजो धाम,
विस्मृति का मोह खींच,
सत्व सुधा अमर सींच,
भरती आनन्द सार।

अशोक : (गीत पूर्ण होने पर) परिवर्तन ही जीवन है, स्थिरता तो मृत्यु है। जीवित रहने का अर्थ ही गति है और गति

परिवर्तन बिना असभव है। जैसा मैने अभी-अभी कहा था मानव सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी इसलिए है कि उसे निसर्ग ने ज्ञान-शक्ति दी है। इस ज्ञान-शक्ति के कारण जीवन के परिवर्तन के पूर्व उसके विचारो मे परिवर्तन होता है और विचारो के परिवर्तन के पश्चात् उन विचारो के अनुसार जीवन मे परिवर्तन। विचारो और जीवन का यह परिवर्तन तब कल्याणकारी होता है, जब हृदय शुद्ध हो। मुझे हर्ष है कि हृदय को शुद्ध रखने के लिए निसर्ग ने मानव-मन को जो सहानुभूति की शक्ति दी है, उस सहानुभूति से उत्पन्न दया के कोप से मेरा हृदय रिक्त नही हुआ है। मानव मस्तिष्क और हृदय दोनो से शासित होता है, परन्तु, मस्तिष्क उसे जिस सत्य का ज्ञान कराता है और उस ज्ञान से वह जीवन के लिए जिन स्वप्नो की सृष्टि करता है वे हृदय द्वारा ही मूर्त्तिमन्त किये जा सकते हैं। उन स्वप्नों की भूमि का हृदय नेह के नीर से सिञ्चन करता है। फिर समस्त जीवो के हित का बीज बोता है। इन बीजो से उत्पन्न पौधो के पोषण के लिए मस्तिष्क से निकली हुई तर्क रूपी पवन की जो प्राय. स्वार्थ से मिश्रित रहती है, आवश्यकता नही है, परन्तु हृदय से उत्पन्न उत्साह रूपी प्राणवायु की आवश्यकता है, जिसमे परार्थ ही परार्थ रहता है।

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान : पाटलिपुत्र के राजभवन का सभाआलय

समय : मध्याह्न

[वही आलय है जो दूसरे अंक के तीसरे दृश्य में था। उसी प्रकार राजपुत्रों, राष्ट्रीयगणों, राजुकों, युक्तो और प्रतिष्ठित नागरिकों आदि से भरा हुआ है। पर आज सिंहासन के दाहिनी ओर की सुवर्ण की आसन्दी पर महाधर्माध्यक्ष के स्थान पर उपगुप्त बैठा है। उपगुप्त की अवस्था लगभग पचास वर्ष की है। वह ऊँचा-पूरा गेहुँए रंग का व्यक्ति है। बौद्ध भिक्षुओं के सदृश पीत चीवर धारण किये है। इसके पास की आसन्दी पर विगताशोक, सिंहासन के बायीं ओर की आसन्दियों पर आज राधागुप्त, महेन्द्र तथा संघमित्रा नहीं हैं। महेन्द्र और संघमित्रा अनेक भिक्षु-भिक्षुणियों के संग नागरिको के साथ बैठे हैं। उस दिन के और आज के दृश्य में एक अन्तर और है, उस दिन आलय जिस प्रकार मंगल कलशों, कदली वृक्षों, पत्र-पुष्पों की वन्दनवारो आदि से सजा था उस प्रकार आज सजा नहीं है। सिंहासन आज भी रिक्त है। थोड़ी ही देर में आज भी वाद्य-ध्वनि सुन पड़ती है और उसके पश्चात् उसी सजधज के साथ शिविका पर अशोक आता है। उसकी शिविका के साथ राधागुप्त पैदल चल रहा है। शिविका सिंहासन के

सामने रखी जाती है । अशोक शिविका से उतर सिंहासन पर बैठता है । राधागुप्त सिंहासन के बायी ओर की आसन्दियों मे से पहली आसन्दी पर ।]

अशोक : (सिंहासन पर से उठ व्यासपीठ पर बैठकर) गुरुदेव, अग्रामात्य, राजपुत्रो, राष्ट्रीयगणो, राजुको, युक्तो, नगर व्यावहारिको, प्रदेष्ट्रियो, भिक्षुओ, भिक्षुणियो, नागरिको तथा अन्य समस्त सभासदगण ! लगभग नौ वर्ष पूर्व इसी सभा-आलय मे आपने मेरा राज्याभिषेक किया था। गत नौ वर्षो मे भारतीय साम्राज्य मे जो कुछ हुआ है वह आपको ज्ञात है। राज्याभिषेक के दिन मैंने आपको अपने राज्य-सचालन के कुछ उद्देश्य बताये थे, उनमें से एक था उत्तरापथ से दक्षिणापथ तक शाति की स्थापना रखना और दूसरा था भारतीय साम्राज्य की एकता। गत नौ वर्षो मे समूचे भारतीय साम्राज्य ने शांति का अपूर्व सुख भोगा है। प्रजा मे दुःख-दारिद्रय का कष्ट भी नही रहा और प्रजा मे जैसा सुख है उसका आभास विहार यात्राओ आदि मे मिलता है।

एक व्यक्ति : आपकी प्रजा सर्वमुखसम्पन्न है !

सभासद : (एक साथ) सर्वसुखसम्पन्न, सर्वमुखसम्पन्न !

अशोक : परन्तु मै सर्वसुखसम्पन्न नही हूँ। यद्यपि मैने अपने और सर्वसाधारण के सुख के और भी कुछ कार्य किये हैं जिनमे प्रधान कार्य है सद्धम्म के प्रचारार्थ देश मे चौरासी हजार विहारो का निर्माण, तथापि एक ओर यदि अहिंसा का अवलम्बन कर इन चौरासी हजार विहारो का निर्माण

हुआ है तो दूसरी ओर प्राचीन परिपाटी के अनुसार हिंसात्मक काण्ड भी चले जा रहे हैं। सहस्रो ब्राह्मणो, श्रवणो आदि के भोजन के लिए तथा विहार-यात्राओं के भोजो के लिए अगणित पशुओ का वध होता है और दूसरी ओर भारतीय एकता के नाम पर हाल ही मे कलिग-युद्ध लड़ा गया, जिसका नर-संहार मुझे जागते-सोते किसी भी अवस्था मे क्षणमात्र को भी चैन नही लेने देता। इसीलिए राज्य-सचालन की भावी नीति के संबंध मे मैने कुछ निर्णय किये है और उन्ही की घोपणा के निमित्त आज की इस सभा का आयोजन किया गया है। मेरी पहली घोपणा है भारतीय साम्राज्य को एकता के लिए अब कोई युद्ध न होगा।

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : भगवान् तथागत की जय !

अशोक : मेरी दूसरी घोपणा है ब्राह्मणों, श्रवणों आदि के लिए अथवा विहार यात्राओ के लिए किसी भी जीवधारी का अब वध न किया जायगा।

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : भगवान् तथागत की जय !

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : सद्धम्म की जय !

अशोक : इस प्रकार भारतीय साम्राज्य में आज से युद्ध और

हर प्रकार की हिंसा की समाप्ति हो जायगी। भेरी-घोष के स्थान पर धर्म-घोप होगा और विहार-यात्राओ के स्थान पर धर्म-यात्राएँ !

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : भगवान् तथागत की जय !

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : सद्धम्म की जय !

अशोक : इस सृष्टि मे मानव का सर्वश्रेष्ठ स्थान उसकी ज्ञान-शक्ति के कारण है, निसर्ग ने मनुष्य को विचार करने की जो शक्ति दी है वह अन्य किसी प्राणी को नही। विचार-परिवर्तन के लिए राज्य का आगे का मुख्य कार्य होगा सद्धम्म का प्रचार। इसके लिए समस्त राज्य मे धम्म महामात्यो की नियुक्ति की जायगी। उत्तरापथ से दक्षिणापथ तक शिला-स्तूपो, शिला-स्तभो आदि का निर्माण होगा जिन पर शिलालेख लिखे जायँगे।

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : भगवान् तथागत की जय !

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : सद्धम्म की जय !

अशोक : इस प्रकार विचार परिवर्तन कर अहिंसा और प्रेम द्वारा केवल भारतीय एकता का ही प्रयास न किया जायगा, पर समस्त जम्बू द्वीप और सारे संसार को इसी अहिंसा और प्रेम के एक सूत्र मे बाँधने का भी प्रयत्न होगा।

इसके लिए सद्धम्म का संदेश लेकर भारत के बाहर भी भिन्न-भिन्न देशों में दूत भेजे जायँगे। इन दूतों में सर्व-प्रथम जायँगे मेरे पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा लंका द्वीप।

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : भगवान् तथागत की जय !

कुछ बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी : सद्धम्म की जय !

अशोक : सद्धम्म के प्रचार का कोई भी यह अर्थ न समझे कि अन्य धर्मों को मैं कोई हेय दृष्टि से देखता हूँ या अन्य धर्मों का इस राज्य में कोई नीचा स्थान है ?

सभासद : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

अशोक : वैदिक धर्म, जैन धर्म, सद्धम्म और अन्य भी जो धर्म हैं वे एक सी पूज्य दृष्टि से देखे जाते हैं और देखे जायँगे।

सभासद : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

अशोक : ब्राह्मण, श्रवण अजीविका आदि समस्त का समान सम्मान है और रहेगा।

सभासद : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

अशोक : अग्रामात्य, राजपुत्र, राष्ट्रीय, प्रादेशिक, धम्ममहामात्य, राजुक, युक्त, उपयुक्त, विनययुक्त, ग्रामकूट, अन्त-महामात्य, नगर व्यावहारिक, प्रदेष्ट्री, व्रजभूमिक, मुखदूत आदि समस्त राजकर्मचारियों को इसी नीति को कार्य रूप में परिणत करना है। संघों, परिषदों,

अनुस्थानयनो, मन्त्रिपरिषदों, जनपदो, निगमसभाओ आदि को भी इसी नीति का प्रतिपालन् करना होगा। तक्षशिला, अवन्ति, सुवर्णगिरि और कलिंग चारों प्रदेशो और इन प्रदेशो के अन्तर्गत आहारो, विषयों, पुरो, ग्रामो तक यही नीति प्रचलित की जायगी। राजकर्मचारियो की हर प्रकार की अनुस्थानयन और नागरिको के हर प्रकार के समाज इसी नीति का प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो प्रकार से समर्थन करेंगे। इन राजकर्मचारियो और नागरिको की परख उनकी भूलो से न की जाकर वे कहाँ तक सफल होते हैं उन सफलताओ से की जायगी। उनके विश्वासो से न की जाकर उनकी कृतियो से की जायगी। जिन्हे हम अन्त कहते है, सीमा पर योन, कबोज, गन्धार, रास्त्रिक-पेतेनिक, भोज-पेतेनिक, नाभक, नाभपति, आन्ध्र, पुलिंद, चोड, पांड्य, सातीयपुत्र, केरलपुत्र, तवपंति इन सभी से इसी नीति के अनुसार व्यवहार होगा।

कुछ सभासद : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

अशोक : राज्य का समस्त कोप इसी धर्माधिष्ठान मे व्यय होगा और इसके लिए अनुग्राहिको का प्रबन्ध किया जायगा। इस कार्य मे किसी प्रकार की परिबाधा क्षणमात्र को भी सहन न होगी।

सभासद : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

अशोक : विचार परिवर्तन के इस प्रयत्न के अतिरिक्त प्रजा मे सब प्रकार के दैहिक सुख रहे इसके लिए राज्य मे

जो कूप, मार्ग-प्रतिथि-ग्रालय, उद्यान आदि सुखवास हैं उनकी वृद्धि की जायगी। शिक्षालय बढाये जायँगे, जिससे एक व्यक्ति भी अशिक्षित नही रहे, रोगियो के लिए नगरों और ग्रामो मे चिकित्सालयो की भी वृद्धि होगी और पशुओ की रक्षा के लिए एक नयी वस्तु पञ्जरोलों की स्थापना की जायगी और इनके प्रधान कर्मचारियों का नाम होगा 'गोध्यक्ष'।

सभासद : धन्य है ! धन्य है !

अशोक : इस ससार मे करूँगा कहने और सचमुच करने में वडा अन्तर है। यथार्थ मे मानव को अपनी कृतियो के सबध मे न बोलकर उन कृतियो को उसके सबंध मे बोलना चाहिए। भगवान् तथागत मुझे करने की और अपने सिद्धान्तो के अनुसार जीवन को चलाने की शक्ति दे, यही मेरी प्रार्थना है। और यह शक्ति भी बड़ी विलक्षण वस्तु है। अनेक वार अपनी ही शक्ति अपने आपको लेकर खेलने लगती है। मेरे सकल्पो को पूर्ण करने के प्रयत्न में इस शक्ति का यह रूप न होने पावे यह भी मै भगवान् तथागत से प्रार्थना करता हूँ।

सभासद : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

अशोक : मनुष्य सूर्य से भी अधिक प्रकाशवन्त और अमारात्रि से भी अधिक काला हो सकता है। उसका मन आकाश से भी अधिक विस्तीर्ण और सुई की नोक से भी अधिक सकीर्ण हो सकता है। फिर शब्दो का क्या मूल्य है, मूल्य

है जीवन किस प्रकार चल रहा है, उसका। हर मानव को प्रकाशवन्त रहने का ही प्रयत्न करना चाहिए और अपने मन को आकाश के सदृश ही विस्तीर्ण रखना चाहिए। साथ ही अच्छाई के लिए जो प्रयत्न वह करता है, उसमे अविश्वास की छाया तक न पडे इसके लिए सतत् सतर्क रह कभी न बुझने वाले आशादीप से अपने मार्ग को सदा द्युतिवन्त रखना चाहिए। आशावादिता मे ही सच्चा जीवन है, आशा के अभाव से आज के साथ ही आगामी कल का भी विनाश हो जाता है।

[अशोक व्यासपीठ से उठ पुनः सिंहासन पर बैठता है। जोर-जोर से जयघोष होते हैं। उपगुप्त अपने आसन से उठ व्यासपीठ पर बैठ जाता है।]

उपगुप्त : राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन ! अग्रामात्य, राजपुत्रो, राष्ट्रीयगणो, राजुको, युक्तो, नगर व्यावहारिको, प्रदेष्ट्रियो, भिक्षुओ, भिक्षुणियो, नागरिको तथा सभासदगणो ! ससार के इतिहास मे आज का दिवस अद्वितीय दिवस है। सम्राटो और राजाओ ने हार के पश्चात् तो युद्ध छोडे है, पर जीत के पश्चात् युद्ध का त्याग एक अभूतपूर्व घटना है। अब तक यह माना जाता रहा है कि राज्योत्कर्ष का सर्वप्रधान साधन हिंसात्मक-समर है, परन्तु सम्राट् अशोकवर्धन ने हिंसा को तिरस्कृत मान अहिंसा और प्रेम से केवल राज्योत्कर्ष करने का सकल्प नही किया है, परन्तु, समस्त ससार को एक सूत्र मे पिरोने

के एक नवीन अनुष्ठान का आरम्भ किया है।

कुछ भिक्षु-भिक्षुणी : (एक साथ) राजराजेश्वर अशोकवर्धन की जय !

कुछ भिक्षु-भिक्षुणी : राजगुरु उपगुप्त की जय !

कुछ भिक्षु-भिक्षुणी : भगवान् तथागत की जय !

कुछ भिक्षु-भिक्षुणी : सद्धम्म की जय !

उपगुप्त : फिर सम्राट् अशोकवर्धन केवल विचार-वीथि में विहार करने वाले नही है। उन्होने अपने विचारो को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए युद्ध और हर प्रकार की हिसा को समाप्त कर प्रेम-पथ पर चलने की एक पूर्ण योजना वनायी है। ऐसे राजा को पाकर केवल भारत-वर्ष ही नही पर समस्त ससार धन्य हो गया है और ऐसे नरेश को उपयुक्त उपाधि हो सकती है देवानाम् प्रिय प्रियदर्शी चक्रवर्ती धार्मिक धर्मराज !

सभासद : देवानाम् प्रिय प्रियदर्शी चक्रवर्ती धार्मिक धर्मराज राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

[उपगुप्त व्यासपीठ से उठता है। नर्त्तकियाँ आती हैं। पहले नृत्य होता है और उसके पश्चात् गाना।]

गीत

जय धर्म धीर ! जय धर्म धाम !
आतंकित खग मृग विकल मीन,
निर्मम-मानव रसना अधीन,
स्नेह, दया, दाक्षिण्य भूल,

मानव का जाग्रत विवेक,
इंगित करता है धर्म एक,
दुख संकुल जग का ताप देख,
दे शीघ्र भुला, निज-दंभ मान!
चेतन सब मे सम, भिन्न गात्र,
दुर्बल का जीवन कृपा-पात्र,
दारुण हिंसा का अस्त्र छोड,
हो जाय मनुज अब पूर्ण काम!

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान   पाटलिपुत्र नगर के बाहर एक विशाल उद्यान का एक भाग

समय ' रात्रि

[वही उद्यान और उसका वही भाग जो दूसरे अंक के दूसरे दृश्य में था। परन्तु, आज यह स्थान दीपावली के कारण दीपों से जगमगा रहा है। वृक्षो की शाखाओं से भी कुछ दीप झूल रहे हैं और कुण्ड में भी कुछ दीप तैर रहे हैं। इधर-उधर कुछ नर-समूह दृष्टिगोचर होते हैं। निकट कुछ नागरिक बातें कर रहे हैं। दूर के नागरिको की बातें तो सुनायी नहीं देतीं, पर निकट के इन नागरिको की बातें सुन पड़ती हैं।]

एक नागरिक : हाँ, हाँ, मै कहता हूँ, दीपावली की यह विहार-यात्रा या धर्म-यात्रा जो कुछ भी कहो, ऐसी सूनी रही है जैसी इसके पहले की कोई विहार-यात्रा नही।

दूसरा नागरिक : मै भी तुमसे सहमत हूँ। दिन भर रूखे-सूखे धर्मोपदेश और रात्रि को जो थोडा-बहुत गाना-बजाना वह भी न कभी ठीक समय आरम्भ होता है न उषःकाल तक चलता है।

तीसरा नागरिक : हाँ, पूरी यात्रा मे एक दिन भी न राग यमन कल्याण सुना और न राग भैरव।

पहला नागरिक : फिर निरामिष भोजन!

दूसरा नागरिक : विविध भाँति के उन मासों का स्वाद तो अब

केवल संस्मरण की वस्तु रह गयी है ।

चौथा नागरिक : पर, भाई, सद्धम्म के प्रचार ने कितनी नैतिकता बढायी है ।

पाँचवाँ नागरिक : और मानव को ही कोई कष्ट न हो यह नही, सारे जीव सुखी तथा सुरक्षित है ।

पहला नागरिक : मानव को कोई कष्ट है या नही सो तो तुम उनसे पूछो जिन्हे कभी इस निरामिष भोजन का अभ्यास नही था ।

दूसरा नागरिक : मै तो कुछ महीनो मे ही भूख के मारे आधा हो गया हूँ ।

तीसरा नागरिक : और मुझे तो यह निरामिष भोजन पचता ही नही । चिकित्सको का कहना है अतडियो को उस प्रकार के भोजन का अभ्यास था अत. थोड़े ही दिनो मे तो शैय्या पकडने वाला हूँ ।

पहला नागरिक : फिर अन्य जीवधारियो की तो तुमने खूब ही कही । धीरे-धीरे ये हरिण, भेड, बकरियाँ, मोर और अन्य जीव-जन्तु इतने बढ जाने वाले है कि इस पृथ्वी पर मानव को खडे रहने के लिए भी स्थान दुर्लभ हो जायगा ।

[**दो भिक्षु इन नागरिकों के निकट आते हैं ।**]

एक भिक्षु : कहिए, आपने आज के प्रवचनो का पूरा अर्थ समझ लिया न ? संयम अर्थात् इन्द्रियों का दमन । भावशुद्धि; अर्थात् विचारो की पवित्रता ।

दूसरा भिक्षु : और दया, दान, सत्य, शौच, शुश्रूषा, अहिंसा

इनके अर्थ करने की तो आवश्यकता ही नही है ।

पहला नागरिक : बहुत अच्छी तरह समझ लिया ।

दूसरा नागरिक : इन्ही शब्दो का अर्थ समझते-समझते तो सारा दिन बीता है ।

तीसरा नागरिक : हम इतनी मोटी बुद्धि के नही है कि दिन भर समझाये जाने पर भी न समझे ।

दोनो भिक्षु : बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ।

[दोनों का प्रस्थान]

पहला नागरिक : किसी तरह पिड छूटा । यह सारा राज्य बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियो का सघाराम हो गया है ।

दूसरा नागरिक : जो यह कहा जाता है कि राज्य सब धर्मों को समान दृष्टि से देखता है यह असत्य है ।

तीसरा नागरिक : सर्वथा असत्य है । अन्यथा वैदिक धर्म के यज्ञ हिंसामय कहकर बद किये जाते ? देव-मंदिरो मे बलिदानों पर रोक लगायी जाती ?

पहला नागरिक : और आप देखियेगा तो युद्ध बंद करने का भी तो क्या फल होता है ।

दूसरा नागरिक : युद्ध सदा से चला आता है, सदा चलता रहने वाला है, उसी मे तो सच्चे वीर की परीक्षा होती है ।

पहला नागरिक : सब नपुंसक हो जाने वाले हैं, नपुंसक !

दूसरा नागरिक : आर्य चाणक्य की सहायता से सम्राट् चन्द्रगुप्त ने जिस मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी वही राज्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र के समस्त नियमो को भंग कर

रसातल को जा रहा है।

तीसरा नागरिक : भाई, थोडा धीरे-धीरे बोलो।

दूसरा नागरिक : धीरे-धीरे बोलने की क्या आवश्यकता है; दमन तो हो नही सकता, बहुत होगा तो प्रेमपूर्वक समझाया ही जाऊँगा न !

[**नागरिको का अट्टहास।**]

तीसरा नागरिक : और देखो, उत्तरापथ से दक्षिणपथ तक एक भी ऐसा प्रधान स्थान नही जहाँ शिलास्तूपो, शिलास्तंभों को खडा कर-कर इन बौद्ध सिद्धान्तो के शिलालेख न लिखाये गये हो।

दूसरा नागरिक : अर्थात्, हम ही नही हमारी भावी पीढियाँ भी इन विचारो का प्रचार कर नपुंसक बनायी जा रही है।

पहला नागरिक : नयी पीढियाँ तो हमसे भी कही अधिक भीरु हो जायँगी क्योकि हममें से तो कुछ मे पुराने विचारो का भी अस्तित्व है। नयी पीढियाँ तो आरम्भ से ही यही सीखेगी।

तीसरा नागरिक : हम भीरु हैं या नपुंसक, यह मै नही मानता।

दूसरा नागरिक : हाँ, हमारे ये विचार ही इस बात का प्रमाण है।

चौथा नागरिक : पर, भाई, जो कुछ कहो यह तो मानना ही होगा कि इस समय जितनी शाति है और प्रजा को जितना सुख है, उतना इसके पहले कभी भी नही था।

पाँचवाँ नागरिक : वह सुख केवल मानव को ही नही समस्त जीव मात्र को है।

पहला नागरिक : यह श्मशान की शांति है।

दूसरा नागरिक : और कितना सुख है सो तो मैने अभी वताया ही।

तीसरा नागरिक : फिर जिसे तुम सुख समझते हो वह शक्ति-हीन होने के कारण। यदि कही से छोटा-मोटा आक्रमण भी हो गया तो यह सुख ऐसे दु ख मे परिणत होगा जिसकी तुम कल्पना नही कर सकते।

[नेपथ्य मे वाद्य और गान की ध्वनि सुन पड़ती है जो निकट आ रही है।]

पहला नागरिक : लो, गाना-वजाना आरम्भ तो हुआ।

दूसरा नागरिक : नर्त्तकियाँ इसी ओर आ रही है।

[कुछ नर्त्तकियों का नाचते-गाते हुए प्रवेश। इनके साथ वाद्य-वादक भी हैं और वहुत सा जनसमुदाय।]

गीत

आज मन-मन मे दीप जले।
मृण्मय दीपक के विग्रह मे,
चेतन है जड के निग्रह मे,
ज्योति किरण को आवृत कर, घिर, तम की छाँह छले।
दीपक के उर का सूनापन,
जब भर देते स्नेह बिन्दुकन,

निज की छवि जब निज मे झलकी,
युग-युग की स्मृति बरबस छलकी,
ज्वलित वर्तिका स्नेह-गरल मे प्रतिपल डूब गले।

[गीत समाप्त होते होते अशोक, उपगुप्त, राधागुप्त, असंधिमित्रा, कारुबाकी, कुणाल, तीवर का प्रवेश। इनके आने पर जय-जयकार होता है।]

अशोक : कहो नागरिको इस वर्ष दीपावली की यह धर्म-यात्रा कैसी रही ?

पहला नागरिक : अत्यन्त सफल, श्रीमान्।

दूसरा नागरिक : पहले तो विहार यात्राओ मे यदि मानवो को सुख मिलता तो उस अनित्य सुख के लिए कितने जीवो का वध होता था।

तीसरा नागरिक : अब तो राज्य की नयी नीति के अनुसार जीव-मात्र महान् सुखी है।

पहला नागरिक : फिर, महाराज, केवल राग-रग ही नही इस यात्रा में दर्शन और श्रृंगार दोनों का कैसा सुन्दर समन्वय हुआ है।

तीसरा नागरिक : सोने मे सुगन्ध !

उपगुप्त : (अशोक से) महाराज, सद्धम्म के भिन्न-भिन्न निकायो का एकीकरण करने के निमित्त जो सगीति बैठने वाली है उसकी घोषणा के लिए आज दीपावली के शुभ दिवस से बढकर दिवस और दीपावली की इस धर्म-यात्रा से बढकर और कौन अवसर आयगा।

अशोक : हाँ, हाँ, गुरुदेव, उस घोषणा के लिए यही उपयुक्त अवसर है। आप वह घोषणा कर दें।

उपगुप्त : (ऊँचे स्वर से) सुनो नागरिको और समस्त उपस्थित जनसमुदाय ! पाटलिपुत्र के अशोकाराम मे एक ऐतिहासिक बात होने वाली है।

कुछ नागरिक : (एक साथ) कौनसी, कैसी ?

उपगुप्त : भगवान् तथागत द्वारा संस्थापित सद्धम्म मे कुछ मतभेद हो गये है। उन मतभेदो के कारण भिन्न-भिन्न निकाय। इन समस्त निकायो के एकीकरण करने के निमित्त, इन समस्त निकायो के विद्वानो की अशोकाराम मे एक संगीति बैठेगी। उसमे शास्त्रार्थ होगा। समस्त निकायो के एकीकरण के निमित्त सारे प्रयत्न किये जायँगे। धम्मशास्त्र के विवेचन के श्रवण का इससे अधिक महत्त्वशाली अवसर किसी को भी जीवन मे मिलने वाला नही है। धम्म के श्रद्धालु सज्जन अशोकाराम मे उपस्थित हो इस शास्त्रार्थ का श्रवण कर सकते है। संगीति की तिथियाँ कुछ समय पश्चात् घोषित की जायँगी !

कुछ नागरिक : धन्य है, धन्य है !

कुछ नागरिक : देवानाम् प्रिय प्रियदर्शी चक्रवर्ती धार्मिक धर्मराज राजराजेश्वर सम्राट् अशोकवर्धन की जय !

कुछ नागरिक : गुरुदेव उपगुप्त की जय !

कुछ नागरिक : भगवान् तथागत की जय !

कुछ नागरिक : सद्धम्म की जय !

[कुछ देर निस्तब्धता ।]

पहला नागरिक : (नर्त्तकियों से) इस दीपावली के शुभ दिवस कोई सुन्दर गान सम्राट् को न सुनाया जायगा ?

एक नर्त्तकी : जैसी सम्राट् की आज्ञा ।

अशोक : हाँ, हाँ, मै सहर्ष सुनूँगा ।

[**गान आरम्भ होता है ।**]

गीत

अम्बर अवनी पर उतर रही
यह अमा निशा तम वाली ।
अञ्चल मे नभ के दीपक
जुगनू की झिल-मिल जाली ।
घन श्यामलता घर-घर की
उज्ज्वल करती दीपाली ।
जगमग दीपक के नीचे
छिपती अँधियारी काली ।
निज क्षण भगुर जीवन को
भूला सा दीपक हँसता ।
इस महा श्याम गह्वर मे
निर्भय एकाकी धँसता ।
मिट्टी के तन मे जलती
चुपचाप ज्योति की ज्वाला ।
क्षण-क्षण मे हटता जाता
अभिमान, मोह, तम काला ।

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान पाटलिपुत्र मे राजभवन के गर्भागार के अवरोधन मे

कारुर्वाकी का कक्ष

समय : रात्रि

[यह वही कक्ष है जिसमें असंधिमित्रा का निवास था। असंधिमित्रा की मृत्यु हो चुकी है और अब इस कक्ष में असंधिमित्रा का एक बड़ा भारी चित्र लगा हुआ है। कारुबाकी एक शयन पर बैठी हुई तमूरा बजाकर गा रही है। कारुवाकी इस प्रकार बैठी हुई है जिससे उसका मुख असंधिमित्रा के चित्र की ओर है। एक प्रकार से वह यह गीत असंधिमित्रा के चित्र को सुना रही है। कारुबाकी अब वृद्ध हो चली है। उसकी अवस्था लगभग पचास वर्ष की है। कानों के निकट के केश श्वेत हो गये हैं। परन्तु इतने पर भी उसमें प्रौढ़ सौन्दर्य विद्यमान है।]

गीत

हे विहग मानस के अधीर।

खोल पर तुम उड चलो उस दूर गत के तीर।
नील नभ सा था जहाँ अन्तर अनन्त उदार,
अचल क्षिति सी धृति अटल थी सह अपरिमित भार,
साँस मे था मन्द शीतल सुरभि शान्त समीर।

रवि-रश्मि का था प्राण-प्रद पावन प्रखर उत्ताप,
मान के धन दूर-लम्बित भर हृदय मे भाप,
तरल करुणा सा झलकता लोचनो मे नीर।
आज आश्रय-हीन खग सी भावना की भीर।

कारुवाकी : (गीत पूर्ण होने पर) चली गयी · तुम चली गयी, जीजी ! और ··और मेरा · मेरा तो संसार हाँ, सारा संसार शून्य करके चली गयी ! ऐसा ··ऐसा स्नेह · ऐसा ·· ऐसा प्रेम · ऐसा·· ऐसा प्रणय किसने·· किसने पाया होगा, इस जीवन मे, जैसा · जैसा मैने पाया था तुम से ! माता, भगिनि, सखी, सभी कुछ, हाँ, सभी कुछ थीं तुम··· तुम मेरी ! अपने · अपने से अधिक ··कही अधिक ध्यान रहता था तुम्हे मेरा। कब · कब सोती हो कब·· कब उठती हो, नीद आयी या नही, और वह भी सुख से आयी या नही, स्वप्नो वाली तो नही आयी, टूट-टूटकर तो नही आयी, खाया या नही ··क्षुधा से खाया या नहीं, स्वाद से खाया या नही, तुम्हारे · तुम्हारे ये नित्य के प्रश्न होते थे, हाँ, नित्य के। तुम · तुम तो गयी जीजी, · ·पर · पर तुम्हारे जाने से मै·· मै तो मृतक से भी अधिक हो गयी। कौन कौन अब वैसे प्रश्न पूछता है ? जब जब तुम थी उस समय · उस समय तो अनेक वार ·· अनेक बार ऐसे प्रश्नो पर मै मै ऊब उठती थी, पर ·· पर अब ··अब वे ही प्रश्न कितने स्मरण आते है। और ···और कितना ध्यान रहता था तुम्हे, उस तीवर का,

महेन्द्र और कुणाल से भी अधिक, हाँ, महेन्द्र और कुणाल से भी अधिक। कौन · कौन विमाता अपनी सौत के पुत्र का इतना इतना ध्यान रखती है। और 'और चली गयी तुम्हारे साथ-साथ श्री, समस्त शोभा राजभवन के इस · इस गर्भागार की, गर्भागार के इस इस अवरोधन की, और ''और अवरोधन, गर्भागार की क्या, समस्त राजभवन की। मै तो कहूँगी सारे पाटलिपुत्र की, सारे भारतीय साम्राज्य की। (कुछ रुककर) फिर · फिर क्या कर डाला सम्राट् ने, इस वृद्धावस्था मे ? तिष्यरक्षिता के सदृश तुम्हारी दासी से विवाह ? वह वह तिष्यरक्षिता ···ओह ! ओह !

[**तिष्यरक्षिता का प्रवेश। तिष्यरक्षिता लगभग पच्चीस वर्ष की अवस्था की गौर वर्ण की अत्यन्त सुन्दर युवती है।**]

तिष्यरक्षिता : हाँ, कोसो मुझे, जितना कोसते बने उतना कोसो ! मुँह भरकर कोसो, पेट भरकर कोसो ! पर जानती हो इस कोसने से मेरा कुछ बिगड़ने वाला नही है। सुनती थी जब महिलाएँ प्रौढ हो जाती है और सारा सौन्दर्य खो जाने के कारण पति द्वारा तिरिस्कृता, त्यक्ता, तव उनकी अन्य इन्द्रियो मे तो वल नही रहता पर जीभ मे बड़ी शक्ति आ जाती है और वह शक्ति अन्यो के कोसने मे लय होती है, अन्य किसी वात मे भी नही। मै तो यह आशा करती थी कि जिस प्रकार वड़ी रानी ने तुम्हे माना

था उसी प्रकार तुम मुझे मानोगी, पर वह उदारता तुम मे कहाँ !

कारुबाकी : चुप भी रह, एक बार बोलना आरम्भ करती है तो किसी वाक्य पर विश्राम लेना तक नही जानती ।

तिष्यरक्षिता : तुम जानती हो विश्राम लेना ! मैने अभी तुम्हारी वे सब बाते सुन ली जो तुम बडी रानी के चित्र से कर रही थी। और अभि क्या, न जाने कितनी बार सुना करती हूँ। घडियो पर घड़िये बीत जाती है, निर्जीव चित्र से बाते करते, पर जब मै कोई बात करने आती हूँ, मुझे जली-कटी ही सुनाती हो। मै तुम से छोटी थी आशा करती थी वेसा ही स्नेह और प्रेम पाऊँगी तुम से, जैसा तुमने पाया था बड़ी रानी से । पर कहा न, वह उदारता तुम मे कहाँ !

कारुबाकी : फिर चल पड़ी चचल जीभ ! बड़ी रानी की और मेरी उदारता मे तुलना तो नही हो सकती, पर जानती हैं स्नेह और प्रेम उपयुक्त पात्र ही पाता है ।

तिष्यरक्षिता : तो तुम बड़ी उपयुक्त पात्र थी, मै नही ! तुम मे जितना सौन्दर्य था उससे मुझ मे कही अधिक है ; देखो तो अपनी आँखे और मेरे नयन, देखो तो अपनी नाक और मेरी नासिका, देखो तो अपने ओठ और मेरे अधर, देखो तो अपने दाँत और मेरी दन्त-पक्ति । अरे मिलान कर लो न अपने मुखडे और सारे शरीर से मेरे आनन और तन का।

कारुबाकी : दोनों हाथो से कानों को थपथपाते हुए) तेरी

इस नित्य-प्रति की चखचख से मैं तो बहरी हो जाऊँगी।

तिष्यरक्षिता : बहरी चाहे हो जाओ, पर, मेरे प्रति तुम्हारा व्यवहार न बदलेगा , क्यो ? मै कहती हूँ, मेरे लिए नही अपने लिए ही इस व्यवहार में परिवर्तन करो। महाराज का मुझ पर जो प्रेम है, वह तुमसे छिपा नही है। यदि मै उन्हे कह दूँ कि तुम्हारे कक्ष मे पैर न रखे तो कक्ष मे पैर रखना तो अलग रहा, दूर से इस कक्ष को देखेंगे भी नही। यदि मै कह दूँ कि तुम से बात न करें तो बात करना तो अलग रहा तुम्हारी छाया के निकट भी न आयँगे।

कारुवाकी : तुझे जो कहना हो कह दे, जो करना हो कर डाल; मेरे प्राण तो न खा। (खीझकर) दासी तो ठहरी !

तिष्यरक्षिता : (अत्यन्त क्रोध से) दासी ! दासी ! कभी दासी रही होऊँगी, आज तो रानी हूँ, वैसी ही रानी जैसे बडी रानी थी, वैसी ही रानी जैसी तुम हो। नही-नही भूल गयी, मुझ पर जैसा राजराजेश्वर का प्रेम है वैसा प्रेम न कभी बडी रानी पर हुआ था और न तुम पर है। बुढ़िया, खूसट कही की !

[पैर पटकती हुई जाती है। उसके जाने पर कारुवाकी जोर से हँस पड़ती है और कुछ रुककर फिर तमूरा उठा बजाकर गाने लगती है।]

गीत

री ! चरम वञ्चना जीवन की !
क्षण-क्षण परिवर्तित चक्र विषम,
कण-कण करता जीवन चर्वण,
रस-सरिता, सूखी तन की ।
मासल, मृदु, सुवरण स्निग्ध गात्र,
चपला की चचल चमक मात्र,
मरु-जल सी तृष्णा मन की ।
दभ, दर्प दौर्बल्य लीन,
हास्य, लास्य-मय देह दीन,
निष्ठुर परिणति यौवन की ।

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान . पाटलिपुत्र मे राजभवन के गर्भागार के अवरोधन

मे तिष्यरक्षिता का कक्ष

समय . रात्रि

[कक्ष लगभग वैसा ही जैसा असंधिमित्रा 'का कक्ष था; उसी प्रकार सजा भी है। एक चौकी पर कुणाल का चित्र रखा हुआ है। कुणाल के चित्र से ज्ञात होता है कि वह अब युवा हो गया है और अत्यन्त सुन्दर है। तिष्यरक्षिता का गाते हुए प्रवेश। वह गाते-गाते कुणाल के उस चित्र को उठा लेती है, चित्र को देखते-देखते गाती और कक्ष में इधर से उधर और उधर से इधर टहलती रहती है।]

गीत

नयनो की श्यामलता मे,
क्यो गहरी एक उदासी ?
सौन्दर्य ऊर्मि चितवन क्यो,
शफरी जल मे भी प्यासी ?
कमनीय दृगो की कोरे;
कानो तक खिच-खिच आती।
कुछ गुप-चुप मन की बातें,
कह उठने को अकुलाती।
जीवन रहस्य के पर्दे,
दृग वातायन मे खुलते।

रंगीन स्वप्न संसृति के
इन प्यालो मे है घुलते ।

[तिष्यरक्षिता गीत पूर्ण होने पर एक शयन पर पैर ऊपर कर बैठ जाती है और दोनों घुटनों के बीच में चित्र रख उसे एकटक देखती रहती है ।]

तिष्यरक्षिता : (चित्र से) कितने ··कितने सुन्दर हो तुम, कुणाल ! विधाता ने सारे शरीर और मुख मे सौन्दर्य कूट-कूटकर, हाँ, कूट-कूटकर भर दिया है । और और समस्त अवयवो मे तुम्हारे ये नेत्र तुम्हारे ये नयन ··तुम्हारे ये लोचन ! ओह ! रतनारे मद से भरे हुए हैं; ऐसे मद से भरे हुए कि जिन्हे देखते ही समस्त सृष्टि की सुन्दरियाँ मदमाती हाँ, मदमाती हो जायँ । ऐसा · ऐसा मद जो पान करने से मदालसा नही बनाता पर दर्शन दर्शन से ही मदमत्त कर देता है । और और कहाँ कहाँ तुम, कहाँ ··कहाँ वह काञ्चनमाला । तुम्हारे योग्य मै थी ! और तुम थे मेरे योग्य ! (कुछ रुककर) थी क्यों ? और थे क्यों ? अभी भी मै ··मै ही तुम्हारे योग्य हूँ, और तुम्ही · तुम्ही मेरे योग्य । यदि···यदि इन···इन नयनो से नेह का एक कटाक्ष भी पा जाऊँ, जीवन···जीवन सफल हो जाय मेरा, और ··और मेरा ही नही, तुम्हारे उस प्रणय के बदले मे तुम तुम भी मेरा जो प्रेम प्राप्त करोगे उस ···उससे तुम्हारा जन्म भी सफल हो जायगा ।···कैसा··· कैसा सुखमय होगा मेरा और तुम्हारा प्रेमपूर्ण वह जीवन !

कौन कर सकता है उस जीवन का वर्णन, अरे वर्णन क्या कल्पना भी ! · हमारे यौवन वसन्त के उस उस जीवन यापन की प्रेरणा के लिए वादरायण के काम-सूत्रो से भी विशद्, हाँ, विशद् ग्रथ की आवश्यकता होगी। (कुछ रुक-कर) तुम जब·· जब मुझे माता सबोधन से सम्बोधित करते हो तब· तब मेरे तन मे, मेरे समूचे तन मे आग-सी लग जाती है । मन·· मन भी जलने, हाँ, जलने लगता है। सुनती थी माता शव्द तो बडा प्यारा शव्द है माता का हृदय पुत्र से वह सबोधन सुन ऐसा पुलकित होता है, उल्लसित होता है जैसा·· जैसा किसी अन्य शब्द से नही । पर···पर वह तब होता होगा जव जव कोई स्त्री यथार्थ मे माता होती होगी । मै·· मै तुम्हारी माता कैसी ? अव-स्था मे भी तुमसे कम । (कुछ रुककर) कितनी···कितनी बार तुम्हे देखती हूँ ··कितनी · कितनी बार तुम से बात करती हूँ, सदा···सदा तुम्हारी भावनाओ का पता पाने के लिए, पर···पर अव तक तो पता नही लगा सकी । प्रेम प्रेम यदि बहुत गहरा हो तो उसकी सच्ची हाँ, सच्ची भावनाओ को जानने के लिए उसी प्रकार गहराई मे डुवकी···डुबकी लगानी पड़ती है, जिस प्रकार मुक्ता प्राप्त करने के लिए समुद्र मे । पर पर यह प्रतीक्षा ' प्रतीक्षा का जीवन अत्यन्त कष्टप्रद हो गया है । आज ' आज इस सबध मे कोई न कोई निर्णय कर ही लेना होगा ।

[**कुणाल का प्रवेश उसकी अवस्था लगभग अट्ठाईस-**

उन्तीस वर्ष का दिखता है। वह गौर वर्ण, ऊँचे कद, छरहरे शरीर का सचमुच अत्यन्त सुन्दर युवक है, लाखों-करोड़ों में एक। उसके बड़े-बड़े लोचनों मे अद्भुत प्रकार का मद से भरा सौन्दर्य है।]

कुणाल : माताजी, आपने मुझे बुलाया है ?

तिष्यरक्षिता : (कुणाल की आवाज सुन जल्दी से उसके चित्र को चौकी पर रखते और सिटपिटाकर उठते हुए) हाँ, हाँ, कुणाल।

कुणाल : (जिसने अपना चित्र तिष्यरक्षिता के घुटनों पर रखे देख लिया था, अपने चित्र को देखते हुए) माताजी, आप मेरा चित्र देख रही थीं ?

[तिष्यरक्षिता कोई उत्तर नहीं देती। एक बार नेत्र उठाकर कुणाल की ओर देखती है और फिर दृष्टि नीची कर लेती है। कुछ देर तक विचित्र प्रकार की निस्तब्धता।]

कुणाल : माताजी, आपको मेरे इस चित्र में कोई विशेषता दृष्टिगोचर होती है ?

तिष्यरक्षिता : यदि किसी में कोई विशेषता होती है तो वह विशेषता उसके चित्र में नहीं आ जाती !

[कुणाल का सिर झुक जाता है। कुछ देर फिर निस्तब्धता।]

कुणाल : (एक आसन्दी पर बैठते हुए) माताजी, इधर कुछ समय से आपके सारे व्यवहारों मे मुझे कुछ विभिन्नता दृष्टिगोचर होती थी। इसके कारण अनेक बार मैं कुछ सोच मे भी पड़ जाता था। पर, आज अचानक सब बातें

स्पष्ट हो गयी ।

तिष्यरक्षिता : (साहस के साथ) भगवान् ने सचमुच मुझ पर बडी कृपा की । ऐसा प्रसग ही उपस्थित हो गया कि मुझे कुछ नही कहना पड़ा और सब बाते स्पष्ट हो गयी । **(दूसरी आसन्दी पर बैठ जाती है ।)**

कुणाल : आप जानती हैं, आपकी भावनाएँ आपको कहाँ ले जा रही है ?

तिष्यरक्षिता : (उसी प्रकार साहस से) वही जहाँ ले जाना चाहिए ।

कुणाल : माताजी ··माताजी !

तिष्यरक्षिता : मुझे माता न कहो । कैसे मै तुम्हारी माता और कैसे तुम मेरे पुत्र !

कुणाल : पर पिताजी ने आपसे विवाह जो किया है ।

तिष्यरक्षिता : पिता के विवाह करने से ही कोई माता हो जाती है ?

कुणाल : पिता जिस स्त्री से विवाह करता है, वह माता नहीं तो और क्या होती है ?

तिष्यरक्षिता : पिता की पत्नी हो सकती है, पर माता नही । तुम से भी कम अवस्था वाली मैं तुम्हारी माता !

[कुणाल का सिर झुक जाता है । कुछ देर निस्तब्धता ।]

कुणाल : (दीर्घ निःश्वास छोड़कर) इस वृद्धावस्था मे आपके सदृश तरुणी से विवाह कर पिताजी ने एक अनुचित कार्य किया है इसे मै स्वीकार करता हूँ । परन्तु, इस विवाह में

रानी बनने की आपकी महत्त्वाकांक्षा भी कम उत्तरदायी नही है । फिर दो अनुचित बाते मिलकर एक उचित बात तो नही होती ।

तिष्यरक्षिता : तो जिसे तुम माता कहते हो उसे उपदेश देने आये हो ?

कुणाल : मै आया तो हूँ आपके बुलाने पर, किन्तु जब माता कहता हूँ तो आप कहती है कैसे आप मेरी माता और कैसे मै आपका पुत्र । जब और कुछ निवेदन करता हूँ तब आप कहती हैं, जिसे तुम माता कहते हो उसे उपदेश देने आये हो !

तिष्यरक्षिता : मैने तुम्हे उपदेश देने नही बुलाया था ।

कुणाल : आपने जिस लिए बुलाया था वह तो मै समझ गया, परन्तु मै आप से स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि आप मुझसे किसी अनुचित अभीष्ट के सिद्धि की आशा न रक्खे ।

[तिष्यरक्षिता क्रोध भरी मुद्रा में नेत्रों से अग्नि-सी बरसाती हुई कुणाल की ओर देखती है । कुणाल नतमस्तक हो जाता है । कुछ देर निस्तब्धता । तिष्यरक्षिता का क्रोध थोड़ी ही देर में करुणा में परिवर्तित हो जाता है ।]

तिष्यरक्षिता : (करुण स्वर में) कुणाल · कुणाल !

कुणाल : (तिष्यरक्षिता की ओर देखते हुए) माताजी, मैने आपसे निवेदन कर दिया कि आप मुझसे किसी अनुचित अभीष्ट के सिद्धि की आशा न रक्खे ।

तिष्यरक्षिता : (उसी प्रकार के स्वर में) पर, कुणाल, क्या उचित

है और क्या अनुचित इसकी जगत मे कभी कोई ठीक और अन्तिम व्याख्या हो पायी है ?

कुणाल : देश-काल के अनुसार सदा उचित और अनुचित की व्याख्या हुई है।

तिष्यरक्षिता : और वह सदा परिवर्तनशील है। एक समय था जब विवाह सस्था ही नही थी। पुरुष और नारी सह-जीवन के लिए स्वतन्त्र थे। वरन् माता पुत्रो को इसलिए पालती-पोसती थी कि युवा होने पर वे उनके साथ पति का-सा आचरण करेंगे। भाई और बहन तो पति-पत्नियो के सदृश रहते ही थे फिर गण लग्न आये और ·

कुणाल : (बीच ही में) आप व्यर्थ की वकवाद कर रही है। मानव ने विकास के पथ से धीरे-धीरे अपनी उन्नति की है। वह कन्दरा मे रहने वाला पशु या घोसले मे रहने वाला पक्षी अथवा जल के भीतर किसी बिल मे रहने वाला जलचर नही, वह सामाजिक प्राणी है। समाज बिना नैतिक सिद्धान्तो के संगठित नही रह सकता। मानव ने अपने अनुभवो के आधार पर इन नैतिक सिद्धान्तो का निर्माण किया और नर-नारी के सह-जीवन के लिए विवाह संस्था की स्थापना हुई। मै उन मानवो मे हूँ जो यह मानते है कि नर-नारी के सह-जीवन के लिए विवाह से अच्छी अन्य कोई पद्धति नही।

तिष्यरक्षिता : और उस विवाह का एक रूप तुम्हारे पिता और मेरा विवाह भी है, जिसे तुमने स्वयं अभी-अभी अनुचित

बताया है ।

कुणाल : यह विवाह का कुत्सित रूप है, इसे मै स्वीकार करता हूँ।

तिष्यरक्षिता : तब ?

कुणाल : तब भी, मै जो कुछ आप चाहती है, उसे उचित नही मानता ।

[तिष्यरक्षिता कुणाल की ओर देखने लगती है । कुणाल सिर नीचा कर लेता है । कुछ देर निस्तब्धता ।]

तिष्यरक्षिता : **(प्रेम भरे स्वर में)** कुणाल, जीवन के दूसरे पहलू की ओर भी देखो, रसमय पहलू की ओर । भगवान् ने मनुष्य योनि दी है ! फिर मनुष्य योनि मे सौन्दर्य का सर्वश्रेष्ठ स्थान है ! इस सौन्दर्य मे युवावस्था ! कितने सुन्दर हो तुम और कितनी सुन्दर हूँ मै ! यह जीवन सदा नही रहता, जीवन की तरुणाई के इस हरे-भरे उपवन मे यह ऋतुराज वसन्त भी सदा रहने वाला नही है। धन्य हैं वही जो इस जीवन की इस अवस्था मे सुखोपभोग कर इसका रस लेते है ।

कुणाल : **(कड़ककर)** अपने को सम्हालिये, माताजी, मै कल ही पाटलिपुत्र छोड़ दूँगा ।

तिष्यरक्षिता : मुझसे भागना चाहते हो ?

कुणाल : पलमात्र को भी यह न सोचियेगा कि आपके प्रति मेरा तनिक भी आकर्षण है इसलिए मै अपने को बचाने के लिए यहाँ से भाग रहा हूँ ।

तिष्यरक्षिता : तब ?

कुणाल : पिताजी की कुछ समय से इच्छा थी कि मैं तक्षशिला का राष्ट्रीय बनकर जाऊँ। आपने एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि अब मेरा जाना ही श्रेयस्कर है। (जाने के लिए खड़ा हो जाता है।)

तिष्यरक्षिता : (पुनः क्रोध से) कुणाल, तुम एक बात जानते हो ?

कुणाल : कौनसी ?

तिष्यरक्षिता : जिसके प्रणय का तिरस्कार किया जाता है वह नारी भूखी बाघिन हो जाती है।

कुणाल : भूखी बाघिन होकर आप मुझे चीर-फाडकर खा सकती है, पर तीसरी बार फिर दोहराता हूँ कि आप मुझसे किसी अनुचित अभीष्ट के सिद्धि की तनिक भी आशा न रक्खे। (शीघ्रता से प्रस्थान।)

तिष्यरक्षिता : (तमककर खड़े हो इधर-उधर टहलते हुए दाँत पीसकर अत्यन्त क्रोध से) अच्छा ''अच्छा, कुणाल, मैं मैं तो तुम्हे सुख देना चाहती थी, अपूर्व सुख और स्वय भी उस सुख से सुख पाना चाहती थी। पर · पर मेरा ऐसा तिरस्कार ! इसका यदि भीषण और पूर्ण प्रतिकार न लिया तो तो मै तिष्यरक्षिता नही, सच्ची स्त्री नही।

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान . पाटलिपुत्र के राजभवन के गर्भागार मे अशोक का कक्ष

समय : रात्रि

[कक्ष वही है जो दूसरे अंक के पहले दृश्य में था, परन्तु अब इसकी सजावट में बहुत अन्तर हो गया है। कक्ष के पीछे की भित्ति में बिन्दुसार, सुभद्रांगी, असधिमित्रा और विगताशोक के बड़े-बड़े चित्र लगे हैं। इन चित्रो के अतिरिक्त पीछे की तथा दोनों ओर की भित्तियों के जो भाग दिखते हैं, उन पर भी पाटलिपुत्र के अशोकाराम तथा देश के अन्य विभागों में बने हुए चौरासी हजार बौद्ध विहारों में से कुछ बडे-बड़े विहारों, शिला-स्तूपों, शिला-स्तंभो, धर्म-यात्राओं, धर्म-प्रचारको की सभाओ, शिलालेखों आदि के चित्र हैं। कक्ष की भूमि पर शयनों, आसन्दियों और चौकियो आदि के अतिरिक्त साँची और भारहुत के बौद्ध स्तूपों, सारनाथ के स्तंभ, लोरिया नन्दगढ़ के स्तंभ तथा अन्य स्तंभों के पाषाण के नमूने सजे हुए हैं। इनमें सबसे अधिक ध्यान को आकर्षित करने वाला सारनाथ के स्तंभ का नमूना है, जिसके चारो ओर सिह और सिंहों के नीचे का चक्र तथा चक्र के दोनों ओर के वृषभ और अश्व स्पष्ट दीख पड़ते हैं। अशोक और कारुवाकी कक्ष मे सारनाथ के स्तंभ के नमूने के सामने खड़े हुए हैं। अशोक अब वृद्ध होगया है। सारे केश श्वेत हो गये हैं. पर शरीर और मुख पर बालों की सफेदी के अतिरिक्त वृद्धावस्था का अन्य कोई चिह्न नही है। कारुवाकी

की अवस्था हमने उसे जब इस अंक के दूसरे दृश्य में देखा था, उससे भी कुछ अधिक हो गयी है, जो उसके केशों की श्वेतता बढ़ जाने से ज्ञात होता है।]

अशोक : प्रिये, आज मेरे राज्यारंभ को बारह-बारह वर्षो के तीन युग समाप्ति के उत्सव के कारण छत्तीस वर्षो की न जाने कितनी घटनाएँ और बाते मुझे स्मरण आ रही हैं।

कारुवाकी : ऐसे अवसरो पर बीते हुए समय की विविध घटनाओ और बातो का स्मरण आना स्वाभाविक ही है, नाथ।

अशोक : इन छत्तीस वर्षों मे क्या-क्या सोचा, क्या-क्या किया और जो सोचा तथा किया वह सब सुरक्षित रहेगा **(दाहिने हाथ की तर्जनी को कक्ष के समस्त चित्रों और पाषाण के नमूनों की ओर घुमाते हुए)** इन सब शिला-स्तूपों, शिला-स्तभो, शिलालेखो आदि के कारण।

कारुवाकी : और इन सबमे प्रधान है यह सारनाथ वाला स्तभ।

अशोक : अवश्य।

कारुवाकी : इस स्तभ के ये चारो सिह और सिहो के नीचे का चक्र सचमुच ही कला की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर है।

अशोक : सौन्दर्य के अतिरिक्त ये अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तो के सूचक और परिचायक भी हैं। **(कुछ रुककर)** राज्यारंभ के चौथे युग के इस दिवस को इन शिलालेखो मे से भी कुछ महत्त्वपूर्ण शिलालेखो को पढ़ जाओ।

कारुवाकी : हाँ, इससे पुराने सस्मरण पुन. नवीन हो जायँगे जो ऐसे महत्त्वपूर्ण दिवसों के उत्सव का प्रधान लक्ष रहता है ।

अशोक : (एक शिलालेख के चित्र के सम्मुख जा) पढो, प्रिये, इस लेख को पढो । मेरे मानसिक परिवर्तन के प्रारंभ का प्रतीक यही लेख है ।

कारुवाकी : (लेख पढ़ते हुए) "कलिंग युद्ध पर देवताओ के प्रिय को वडा पश्चात्ताप हुआ । देवताओ के प्रिय को इस वात से वडा खेद हुआ कि एक नये देश के विजय करने के समय कितने लोगो की हत्या करनी पडी, कितनों की मृत्यु हुई, कितने ही कैद किये गये ।"'कलिंग देश की विजय के समय जितने आदमी मारे गये, मारे या कैद हुए उनका शताश अथवा सहस्राश भी यदि मारा जाय या देश से निकाला जाय तो वह देवताओ के प्रिय को वड़ा दु ख का कारण होगा "देवताओ का प्रिय सव जीवो की रक्षा, संयम, समचर्या तथा हित चाहता है । धर्म की ही विजय को देवताओ का प्रिय मुख्य विजय मानता है ।"

अशोक : (दूसरे लेख के चित्र के सम्मुख जाकर) अच्छा, इसे पढो ।

कारुवाकी : (लेख पढ़ते हुए) "सब मनुष्य मेरी सन्तान के समान हैं और जिस प्रकार मैं चाहता हूँ कि मेरी सन्तान इस लोक और परलोक में सर्वप्रकार के हित और सुख को प्राप्त करे उसी प्रकार मैं चाहता हूँ कि सब

मनुष्य हित और सुख को प्राप्त करे ।"

अशोक : (**तीसरे शिलालेख के चित्र के सामने जा**) अब इसे पढो ।

कारुबाकी : (**शिलालेख को पढ़ते हुए**) "देवताओ का प्रिय प्रियदर्शी राजा कहता है कि धर्म का पालन करना ठीक है परन्तु धर्म क्या है ? पापो का अभाव और अच्छे कामो का करना अर्थात् दया, दान, पवित्रता और सच्चाई से जीवन निर्वाह करना ।"

अशोक : (**चौथे शिलालेख के सामने जा**) अब इसे ।

कारुबाकी : (**पढ़ते हुए**) "यहाँ कोई जीव मारकर बलिदान न किया जाय ··पहले देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के ही रसोईघर के लिए प्रतिदिन हजारो जीव मारे जाते थे पर जिस समय यह लेख लिखवाया गया केवल तीन जीव, दो मोर और एक हरिण मारे जाते हैं । इनमे भी हरिण नित्य नही मारा जाता । ये तीन जीव भी भविष्य मे नही मारे जावेगे ।"

अशोक : (**पाँचवें शिलालेख के सामने जा**) अब इसे पढो ।

कारुबाकी : (**पढ़ते हुए**) "प्राचीन समय से राजा लोग आखेट तथा आमोद-प्रमोद और विहार-यात्रा के लिए निकलते थे । देवताओ के प्रिय राजा ने अपने राज्याभिषेक के दस वर्ष पश्चात् सबोधि की यात्रा की । इस प्रकार विहार-यात्रा के स्थान पर धर्म-यात्रा की प्रथा पड़ी ।"

अशोक : (**छठवें शिलालेख के सामने जा**) अब इसे भी पढो ।

कारुवाकी : (पढ़ते हुए) "मनुष्य को दूसरे सम्प्रदायो का भी आदर करना चाहिए। ऐसा करने से अपने सम्प्रदाय की उन्नति और दूसरे सम्प्रदायो का उपकार होता है। इसके विपरीत आचरण से न केवल दूसरे संम्प्रदाय का अपकार ही होता है वरन् अपने सम्प्रदाय को भी क्षति पहुँचती है... अपने आपस मे मिल-जुलकर रहना और दूसरे के धर्म को आदर से सुनना ही अच्छा है।"

अशोक : (सातवे शिलालेख के सामने जा) फिर, प्रिये, मैंने केवल उपदेश ही नही दिये, इन उपदेशो के अनुसार स्वय कार्य भी किया है, और राजसत्ता के द्वारा अनेक कार्य कराये भी है।

कारुवाकी : (पढ़ते हुए) "देवताओ का प्रिय प्रियदर्शी राजा यह कहता है कि प्राचीन समय से कभी ऐसा पहले नही हुआ कि किसी भी समय राजकीय समाचार तथा अन्य राजकाज सबंधी बाते राजा के सम्मुख उपस्थित की जाती हो, परतु मैने यह प्रबध किया है कि प्रत्येक समय चाहे, मै भोजन करता होऊँ, चाहे गर्भागार मे होऊँ, चाहे अवरोधन मे, चाहे पशुशाला मे, चाहे देव-गृह मे, चाहे उद्यान मे, सब स्थानो पर प्रतिवेदक प्रजा के सबध मे मुझे सूचना दे सकते हैं। सब स्थानो मे मै प्रजा के कार्य करता हूँ। यदि किसी बात की मैने आज्ञा दी हो उसके विषय मे या जो कार्य महामात्यो के ऊपर छोडे गये है या उन महामात्यो की परिषद् मे सदेह, मतभेद या पुनर्विचार की

आवश्यकता हो तो बिना विलम्ब के सब स्थानो और सब समय मुझे उसकी सूचना दी जाय। राज-कार्य मे मै कितना ही उद्योग करूँ उससे मुझे संतोष नही होता। सब लोगो की भलाई करना ही मैने अपना कर्त्तव्य माना है और यह उद्योग और राज-कार्य सचालन से ही पूरा हो सकता है। सर्वलोक हित से बढकर और कोई अच्छा काम नही है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ वह इसलिए है कि प्राणी-मात्र का मेरे ऊपर जो ऋण है उससे मै मुक्त होऊँ और उनका इस लोक तथा पर-लोक मे हित बढे। यह धर्म-लेख इसलिए लिखवाया गया है कि यह चिरस्थायी रहे और मेरे पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र सब लोगो की भलाई के लिए सदा उद्योग करे। अत्यधिक प्रयत्न के बिना यह कार्य कठिन है।"

अशोक : (आठवें शिलालेख के सामने जा) अब इसे पढो, प्रिये !

कारुवाकी : (पढ़ते हुए) "मेरे राज्य मे सब जगह युक्त, राजुक और प्रादेशिक प्रति पाँचवे वर्ष शासन सबधी दूसरे कार्यों के साथ-साथ ,लोगो को यह धर्मानुशासन बताने के लिए भी दौरा करें—'माता-पिता की सेवा करना तथा मित्र, परिचित, सबधियों, ब्राह्मणों और श्रवणो की सहायता करना अच्छा है, जीवो को न मारना अच्छा है, थोड़ा व्यय करना और थोडा सचय करना ही ठीक है। मंत्रि-परिषद् भी युक्तों को आज्ञा दे कि वे इसकी गणना रक्खे

कि ये दौरे किन उद्देश्यों से कहाँ और किस प्रकार किये गये ।"

अशोक : (नवम शिलालेख के सामने जा) अब इसे पढो ।

कारुबाकी : (पढ़ते हुए) "देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी के राज्य मे सब स्थानो पर तथा जो पड़ोसी राज्य हैं जैसे चोड, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपरणी और सीरिया के यवन राजा अंतियोक और उसके अन्य पड़ौसी राजाओं के देशो मे भी देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने मनुष्यों की और पशुओ की चिकित्सा का प्रबध किया है । मनुष्यों और पशुओ की उपयोगी औषधियाँ जहाँ-जहाँ नही है वहाँ लाकर लगवायी गयी है । इसी प्रकार जहाँ-जहाँ फल और फूल नही होते थे वहाँ पर वे भी लाकर लगवाये गये हैं । मार्गो मे मनुष्यो और पशुओ के उपभोग के लिए कुएँ खुदवाये गये ।"

अशोक : (दसवें शिलालेख के सामने जा) और मनुष्य की अंतिम निर्बलता जो लोकेपणा है उनसे भी प्रेरित होकर मैने यह सब नही किया है, यह तुम्हे इस शिलालेख के पढने से ज्ञात हो जायगा ।

कारुबाकी : (पढ़ते हुए) "देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा यश या कीर्ति को लाभदायक नही मानता, जो कुछ भी यश या कीर्ति को वह चाहता है तो केवल इसलिए कि उसकी प्रजा वर्तमान और भविष्य मे सदा धर्म को सुने और धर्म का पालन करे ।"

अशोक : (ग्यारहवें शिलालेख के सामने जा) और अब यह अंतिम लेख अपने संबंध मे भी पढ लो ।

कारुवाकी : (लेख पढ़ते हुए) "देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा की आज्ञा से सब स्थानो के महामात्यो को सूचना दी जाय कि द्वितीय रानी की दी हुई कोई भी भेंट का, फिर वह आम की वाटिका, उद्यान, सदावृत्त अथवा दूसरा कुछ भी हो निम्न प्रकार से उल्लेख किया जाय—

'द्वितीय रानी अर्थात् तीवर की माता कारुवाकी की दी हुई ।' (कुछ रुककर) तो आपने मुझे भी अमर कर दिया ।

अशोक : (कारुवाकी का हाथ पकड़ शयन पर बैठ तथा उसे बैठाते हुए) तो राज्यारंभ के तीसरे युग की समाप्ति और चौथे युग के प्रथम दिवस शयन के पूर्व हमने छत्तीस वर्षो के दीर्घकाल का सिंहावलोकन कर डाला ।

कारुवाकी : यद्यपि उत्तरापथ से दक्षिणापथ तक आपके सहस्रों शिलालेख फैले हुए हैं और इन सहस्रो शिलालेखो मे से आपने कुछ के ही चित्र यहाँ लगवाये हैं तथा उनमे से भी हमने कुछ ही पढे तथापि इतने से ही सिंहावलोकन तो हो ही जाता है ।

अशोक : इस सिंहावलोकन को करते हुए मुझे वैसा ही जान पडा जैसे उस नाटक को देखने से जान पडता है जिसे पहले भली भाँति पढ लिया हो । फिर मेरे मन मे एक बात और उठी ।

कारुवाकी : कौनसी ?

अशोक : किसी बीज को सरलता से नष्ट किया जा सकता है, पर जब वह बीज वटवृक्ष के सदृश वृक्ष का रूप ग्रहण कर ले तब उसे नष्ट करना इतना सरल नही रहता। एक और बात भी मेरे मन मे आयी।

कारुवाकी : कौनसी ?

अशोक : मानव अपने कार्य मे अधिकतर इसलिए असफल होता है कि आयु बढने पर वह सोचने लगता है कि अब समय ही कितना बचा है ? यह कोई नही जानता कि किसके लिए कितना समय निर्धारित है। कार्य करते समय तो हम यही सोचे कि आनेवाले कल का काम भी हमे आज कर डालना है। परन्तु, किसी कार्य के संकल्प के समय हमे यही विचार करना चाहिए कि हम अनन्त काल तक रहनेवाले है। समय रूपी झझावात मे हम अपने को पतझड का पत्ता न माने। पानी का बुदबुदा न समझे। हम रेणु के एक कण है यह अनुभव न करे।

कारुवाकी : (कुछ देर सोचते हुए) ठीक।

[कुछ देर निस्तब्धता]

अशोक : प्रिये, मैने किन विचारो से राज्य-ग्रहण का प्रयत्न किया था ? उस समय मेरा आदर्श वाक्य था 'वीर भोग्या वसुन्धरा'। राज्य ग्रहण के कुछ ही समय पश्चात् मेरे विचारों में परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ और कलिंग-युद्ध के पश्चात् तो विचार क्रान्ति ही हो गयी। उसी क्रान्ति

के अनुरूप आगे का कार्य भी हुआ। इस कार्य मे मुझे सफलता नही मिली यह मै नही कहता। सफलता और असफलता का सबध यथार्थ मे मनुष्य के अन्त करण से है। यदि मानव अपने अन्त.करण मे जो कुछ वह करता है उसके कारण आगे को उसी कृति को करने के लिए वल का अनुभव करता है, साथ ही अपने उद्देश्य में उसे पूर्ववत् विश्वास बना रहता है तो वह अपनी कृति में सफल हुआ यह मानना ही होगा। सफलता, जैसा मैने अभी कहा, अपने अन्त'करण से सबधित है। अपने उद्देश्य को कार्य रूप मे परिणत करने के लिए जिस वल की आवश्यकता है उसे अपने मन से दृढ़पूर्वक पकड़े रहना आवश्यक है, क्योकि यदि मन मे इन दोनो में से किसी का भी फिसलना आरम्भ होता है तो फिर उसकी कोई सीमा नही रह जाती। जैसे एक बुझे हुए तारे से निकला हुआ प्रकाश उस तारे के बुझ जाने पर भी कुछ काल तक दिखता रहता है उसी प्रकार फिसलते हुए मानव-मन की भीतरी अवस्था के वाह्य प्रदर्शन मे देर लगती है पर यथार्थ मे ज्योही फिलसन आरम्भ हुई त्योही सव कुछ समाप्त हुआ। मेरे अन्त.करण मे किसी प्रकार की फिसलन का लवलेश भी नही है। इसीलिए मैने कहा मुझे अपने कार्यो मे सफलता मिली है। फिर जो कुछ मैने जीवन मे किया है उससे मुझे संतोष ही है।

कारुबाकी आप 'सतोष ही' शब्द का प्रयोग करते हैं, नाथ !

अशोक : हाँ प्रियतमे, इसके कारण है।

कारुवाकी : कैसे ?

अशोक : तुम देखती नही कि ऐसे कार्यो के पश्चात् भी इस समय देश की कैसी अवस्था है ?

कारुवाकी : कैसी ?

अशोक : प्रजा को पूर्ण सन्तोष नही, जो मांसाहारी थे वे तो बहुत ही असतुष्ट है। विहार-यात्राएँ जो धर्म-यात्राओ मे परिणत हुई हैं वे कुछ लोगो को बडी रूखी-सूखी जान पड़ती है। भेरी-घोष के स्थान पर धर्म-घोप को नीति निर्बलता ला रही है, ऐसा कुछ लोगो का मत है, यहाँ तक कि अग्रामात्य राधागुप्त तक का।

कारुवाकी : इस प्रकार का थोड़ा-बहुत मतभेद तो, नाथ, इस विश्व मे सदा रहता ही है।

अशोक : हाँ, यह तो मैं भी मानता हूँ और इसीलिए तो जीवन मे मैने जो कुछ किया उससे मुझे असतोष नही है। मैने कहा ही मुझे संतोप ही है।

कारुवाकी : आपको परम संतोष होना चाहिए, नाथ।

अशोक : मुझे परम संतोष होता यदि "यदि मै व्यक्तिगत जीवन मे सुखी रहता। असधिमित्रा को मै पलमात्र को भी विस्मृत नही कर पाता। लक्ष्मण के समान अनुज विगताशोक मेरे रहते मेरे सामने ही चल बसा। महेन्द्र और सघमित्रा भिक्षु-भिक्षुणी हो गये। कुणाल सुदूर स्थान तक्षशिला मे है और · और एक बात है।

कारुवाकी : कौनसी ?

अशोक : आज के से दिवस को जब मैं अपना आत्म-निरीक्षण करता हूँ तब मुझे अपने मे भी कुछ ऐसे दोष दिख पड़ते है कि क्या कहूँ !

कारुवाकी : निर्दोष तो भगवान् ही माने जाते हैं।

अशोक : प्रिये, इस सृष्टि की इस सर्वश्रेष्ठ रचना मानव मे मानव की भी दो इन्द्रियो का विरोध कदाचित् सबसे कठिन है।

कारुवाकी : कोनसी इन्द्रियों का ?

अशोक : रसनेन्द्रिय और शिश्नेन्द्रिय का। मुझे मयूर और हरिण के मास इतने रुचिकर थे कि अन्य जीव-हिंसा का निषेध कर देने के बहुत काल पश्चात् तक राज्य के रसोई-घर के लिए नित्य दो मयूरो और कभी-कभी हरिण का वध होता रहा। अत्यधिक कठिनाई से मै रसनेन्द्रिय का निग्रह कर सका और इन जीवधारियो की भी हिंसा समाप्त हुई, परन्तु शिश्नेन्द्रिय का निरोध तो इस वृद्धा-वस्था मे भी मुझसे नही हुआ। इस तिष्यरक्षिता से इस अवस्था मे मेरा विवाह

[नेपथ्य मे गान सुन पड़ता है। अशोक और कारुवाकी का ध्यान उस ओर जाता है। दोनो चुप हो गान सुनने लगते हैं। गान में एक पुरुष और एक महिला का स्वर है।]

गीत

पकड़ूँ किस अञ्चल का छोर !
पथ मे भटक सिसकता दुर्बल
उत्पीडन सहँ घोर।
तम-सागर मे नयन खो गये,
आशा सुख उल्लास सो गये,
प्रलय निशा मे डूब गया
इस जीवन का मधु भोर।
सत्ता सौख्य समर्पित तन मन,
व्यर्थ न्याय निष्ठा का गर्जन,
पीत पत्र सा धर्म उडाती
झञ्झा स्वार्थ झकोर।

अशोक : (गीत पूर्ण होते-होते कारुबाकी से) प्रिये, यह तो कुणाल और काञ्चनमाला का-सा स्वर जान पड़ता है।

कारुबाकी : हाँ, मुझे भी उन्ही के स्वरो का भास होता है।

अशोक : देखूँ...देखूँ तो ! और प्रतिहारी को भेज बुलवाऊँ गानेवालों को। (शीघ्रता से प्रस्थान।)

[कारुवाकी कुछ ही देर में शयन से उठ कक्ष में इधर-उधर घूमकर कक्ष के चित्रों, पाषाण के नमूनों आदि को देखती है। कुछ गुनगुनाती भी रहती है। अशोक का कुणाल, काञ्चन-माला और दशरथ के साथ प्रवेश। तीनों भिखारियों के-से वस्त्रों में हैं। कुणाल अंधा हो गया है और लाठी से टटोलता हुआ चलता है। काञ्चनमाला सुन्दर युवती है। दशरथ सुन्दर बालक है।]

अशोक : (उद्विग्नता की पराकाष्ठा से एक शयन पर गिरते हुए) कारुवाकी, कारुवाकी ! कुणाल, अन्धा !

कारुवाकी : (झपटकर इन तीनों के निकट आते हुए) है, है !

[कारुवाकी स्तब्ध-सी कुणाल की ओर देखती है। कुणाल, काञ्चनमाला और दशरथ तीनों खड़े रहते हैं। एक विचित्र प्रकार की निस्तब्धता।]

अशोक : (शयन से धीरे-धीरे उठते हुए अत्यन्त भर्राये हुए स्वर में) कुणाल ! तुम्हारी आँखें और तुम्हारा यह वेष, पुत्रवधू काञ्चनमाला इस दशा मे, और यह मेरा पौत्र दशरथ ! ओह !

कुणाल : आँखे तो, पिताजी, आपने मँगवायी थी। आज्ञा पाते ही निकालकर भेज दी और यह वेप तो इसलिए कि आँखो के जाने के पश्चात् तक्षशिला का राजकाज कैसे चलाता, यहाँ आने का निश्चय कर आया भी नही हूँ, अब तो जहाँ पैर ले जाते है, जाता हूँ, गाता हूँ और गाकर भीख माँग कर खाता हूँ। यह काञ्चनमाला अब क्या भारत सम्राट् की पुत्रवधू है ? यह दशरथ अब क्या भारत के राज-राजेश्वर का पौत्र है ? काञ्चनमाला है एक अन्धे भिखारी की पत्नी और दशरथ है एक दर-दर भटकने वाले सूरदास की लाठी।

अशोक : (जो कुणाल का पहला वाक्य सुनते ही घबराकर अवाक्-सा खड़ा होगया था और जो कुणाल की शेष बातें इस प्रकार सुन रहा था जैसे स्वप्न मे कुणाल की

बात पूरी होते ही चौंककर) आँखें, तुम्हारी आँखें ! मैंने मँगवायी थी ! मेरी आज्ञा का पालन कर तुमने आँखों को निकालकर मुझे भेजा था !

कुणाल : हाँ, पिताजी, आपका मुद्रा लगा हुआ आज्ञा-पत्र आया था ।

अशोक : (चिल्लाकर) यह तो कोई षड्यन्त्र, भीषण, घृणित नीच षड्यन्त्र जान पड़ता है !

कारुवाकी : अवश्य, अवश्य ।

[पागलों की-सी मुद्रा मे तिष्यरक्षिता का प्रवेश]

तिष्यरक्षिता : हाँ, यह षड्यन्त्र था, भीषण षड्यन्त्र था, दारुण षड्यन्त्र था, घृणित षड्यन्त्र था, नीच षड्यन्त्र था ! कहा गया है न कि पाप सिर पर चढ़कर बोलता है। वह आज बोल रहा है । यह मेरा षड्यन्त्र था ।

[तिष्यरक्षिता के इस भाषण से एक विलक्षण प्रकार का सन्नाटा छा जाता है । कुछ देर निस्तब्धता ।]

अशोक : (अत्यन्त क्रोध से) तू कितनी नीच है, इसका धीरे-धीरे पता मुझे लग रहा था, परन्तु परन्तु तू इतनी नीच है इसका पता इसका पता तो (गला अवरुद्ध होने के कारण आगे कुछ नहीं कहने पाता ।)

तिष्यरक्षिता : नीच ही नही, मै तो इसके भी कही आगे हूँ, मानवो में उच्च और नीच मानव होते है, मै तो मानवी ही नही, दानवी हूँ, राक्षसनी हूँ, पिशाचिनी हूँ !

कारुबाकी : दानवी और राक्षसनी भी कदाचित् ऐसी नही होती होगी जैसी तू है ।

तिष्यरक्षिता : (**क्रोध से कारुबाकी की ओर देखते हुए**) तुम ` तुम बीच मे मत बोलो । मुझे जो कुछ कहना होगा मै सम्राट् से कहूँगी । (**अशोक से**) नाथ ! मै सब कुछ बता देती हूँ, कुछ छिपाकर न रक्खूँगी । एक वाक्य क्या, एक शब्द, उसका अक्षर और उसकी मात्रा भी असत्य न कहूँगी, कुणाल के सौन्दर्य ने मेरी तरुणाई को आकर्पित किया, मैने कुणाल से प्रणय-भिक्षा माँगी और जब उसे न देकर ये तक्षशिला चले गये तब ··तब असफल प्रेम और प्रतिशोध के दहकते दावानल की ज्वलित-ज्वाला मे जलते हुए मैने आपकी मुद्रिका का उपयोग कर वह पत्र कुणाल की आँखो के लिए भेजा जिसके सबध मे ये अभी आपसे कह रहे थे। इनके नयनो पर मैं सबसे अधिक मुग्ध हुई थी वही मैने माँगे। मै जानती थी कुणाल आपकी आज्ञा को किस दृष्टि से देखते है। मुझे विश्वास था उन लोचनो के पाने का। वे आँखें आ गयी। उनके आते ही किस प्रकार देखा मैने उन्हें ! उन नेत्रों में निज का क्या-क्या सौदर्य था ? वह सुखमा तो थी उनके कुणाल के आनन पर रहने से ! उस पद से पदच्युत होते ही वे हो गये थे मास के वीभत्स लोथडे , घृणित, दुर्गन्धयुक्त ! और और उसी के साथ भयावह, क्योकि क्योकि उनके पीछे उसके मँगाने का इतिहास जो था। और···और उन आँखो के आने के पश्चात् मेरी जो

भीषण दशा हुई है वह· वह तो वर्णन करने के परे है। अब मैं चाहती हूँ, मौत। इस कुकर्म, घोरतम कुकर्म करने के पश्चात् मैं एक क्षण भी जीवित नही रहना चाहती।

[फिर कुछ देर निस्तब्धता।]

अशोक : (दीर्घ निःश्वास छोड़कर शयन पर बैठते हुए) मौत ·· मौत से भी कही···कही भीषण दण्ड मिलना चाहिए, तुझे। पर···पर मौत से अधिक भीषण दण्ड हो क्या सकता है ?

[तिष्यरक्षिता का धीरे-धीरे प्रस्थान। फिर कुछ देर निस्तब्धता।]

कारुवाकी : चलो, कुणाल, काञ्चनमाला, दशरथ, तुम लोग मेरे साथ आओ। तुम्हे इस समय विश्राम की सबसे अधिक आवश्यकता है।

[अशोक कुछ नही कहता। चारो का प्रस्थान। इनके जाने के पश्चात् अशोक दोनो हथेलियों पर अपना मुख रख रो पड़ता है। राधागुप्त का प्रवेश। राधागुप्त अत्यन्त वृद्ध हो गया है। राधागुप्त के आने की आहट पा अशोक अपना सिर उठाता है और राधागुप्त को देख अपनी आँखें पोछ डालता है।]

राधागुप्त : श्रीमान् ने मुझे बुलाया था ?

अशोक : (स्वस्थ होते हुए) हाँ, अग्रामात्य, बैठो।

[राधागुप्त शयन के निकट ही एक आसन्दी पर बैठ जाता है।]

अशोक : मैने आपको इसलिए बुलाया था कि मैने अपनी समस्त

सम्पत्ति जो कुक्कुटाराम के विहार को देने के लिए कहा था उसे क्या आपने रोक दिया ?

राधागुप्त : हाँ, महाराज, ऐसा करना अनिवार्य हो गया था।

अशोक : क्यो ?

राधागुप्त : इसलिए कि आपकी सम्पत्ति की अब राज्यकोष में आवश्यकता है।

अशोक : **(कुछ आश्चर्य से)** मेरी निज की सम्पत्ति की राज्य-कोष मे आवश्यकता !

राधागुप्त : हाँ, सम्राट्, राज्यकोप से इतने अधिक दान हुए हैं कि राज्य-काज चलाने के लिए भी अब धन नही बचा है।

[अशोक सिर झुका लेता है। कुछ देर निस्तब्धता।]

अशोक : **(सिर उठाते हुए)** अग्रामात्य, मैं जानता हूँ कि जिस प्रणाली से इस समय इस राज्य का कार्य चल रहा है, उससे आप सहमत नही है।

राधागुप्त : हाँ, महाराज, मै सहमत नही हूँ, परन्तु मेरे सहमत न रहने पर भी जब तक हो सका मैंने श्रीमान् की हर आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। मैं सोचता था अहिंसा और प्रेम के इस मार्ग से कदाचित् भारतीय साम्राज्य का एकीकरण हो समूचे जम्बूद्वीप की स्थायी भलाई हो सकेगी। पर अब मै देखता हूँ यह सम्भव नही है। भारतीय साम्राज्य का एकीकरण और जम्बूद्वीप की भलाई तो दूर की बात है, अब तो मौर्य साम्राज्य मे ही यत्र-तत्र विद्रोह उठ खडे होते है। न सेना है और न कोप मे धन।

मुझे भय है कि राजराजेश्वर सम्राट् चन्द्रगुप्त ने आर्य चाणक्य की सहायता से जिस मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी उस साम्राज्य के पैर भी लड़खड़ा रहे है, और क्षमा कीजिए, मेरी स्पष्टवादिता को, आपके पश्चात् मुझे इस राज्य की कुशल नही दिखती।

अशोक : (विचारते हुए) मै तो बड़ा आशावादी व्यक्ति हूँ और आशावादी व्यक्ति के लिए जीवन का क्षितिज कभी भी अन्धकारमय नही रहता। फिर वह अपने जीवन के जो उद्देश्य स्थिर करता है वे केवल उद्देश्य नही रहते वरन् उद्देश्य रहते हुए भी कृति के साधन का भी काम करते है। खेद की बात इतनी ही रहती है कि मानव-प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ रचना होने पर भी सदा मानव नही रहता। राज्य और सम्पत्ति पर राज्य और सम्पत्ति मे भी ऊँचे कामो के लिए अधिकार रहे तो बुरा नही, पर यदि चैतन्य मानव पर जड राज्य और सम्पत्ति का अधिकार हो जावे तब तो अवस्था शोचनीय हो जाती है और यही हिंसा का जन्म होता है। अहिंसा और प्रेम का मार्ग ही मै इस देश, जम्बूद्वीप और सारे ससार के लिए कल्याणकारी मार्ग मानता हूँ। मौर्यवश का राज्य ! यह · यह, अग्रामात्य, बडी · बडी ही गौण बात है। ससार मे न कोई व्यक्ति सदा रह सकता है और न किसी कुल का सदैव दौरदौरा। जो हिंसा के मार्ग से चले उन व्यक्तियो का या उनके वंश का भी क्या सदा प्रभुत्व रहा है ? सृष्टि मे सभी परि-

वर्तनशील है । हमे अपने कार्य मे चाहे अभी पूर्ण सफलता न मिली हो पर आज नही तो कल और कल नही तो परसों, सौ, हजार, दस हजार वर्ष मे भी क्यो न हो, इसी मार्ग से विश्व का कल्याण सम्भव है । मैने जितना भी विचार किया है यही सिद्ध हुआ कि जिस मार्ग पर मै चल रहा हूँ वही ठीक मार्ग है । बलिष्ठतम अन्त.करण वह है जो सारे संसार के विरोध के सम्मुख भी अपने मत पर एकाकी अटल खडा रह सकता है । मेरे मन मे इस बात पर थोड़ा भी सदेह नही है कि मेरा मत ही ठीक मत है । यदि अच्छाई पर मन सदेह करने लगे तब तो जीवन जीने योग्य नही रह जाता । और अपने समय मे जो कुछ हो रहा है वह ठीक न होने पर भी यदि यह विश्वास हो जाय कि उससे परे कुछ हो ही नही सकता अत वही ठीक है तब तो ससार प्रगति नही कर सकता । अच्छे चित्रो मे यदि कही छाया दिख पड़ती है तो वह इसलिए कि उस चित्र के द्युतिवन्त स्थान और भी द्युतियुक्त हो जायँ । फिर इस प्रकार के कार्यों का सच्चा फल तो युगों के पश्चात् निकलता है । यदि सिद्धान्त सही है तो उनका कभी न कभी सत्फल भी निश्चित है । (कुछ रुककर) अच्छा, इस विषय पर तो फिर कभी ब्यौरेवार चर्चा होगी, अभी जो अनर्थ हुआ है, वह आपने सुना ?

राधागुप्त : (कुछ घबराकर) क्या क्या हुआ, महाराज ?

अशोक : राजपुत्र कुणाल अन्धा होकर काञ्चनमाला और

दशरथ के साथ भिखारियो के वेष मे तक्षशिला से आया है। तिष्यरक्षिता इस सारे काण्ड की अपराधिनी है। उसे मैने प्राणदण्ड दिया है।

राधागुप्त : (अत्यन्त आश्चर्य से) अच्छा !

अशोक : मौर्य साम्राज्य का युवराज मै कुणाल के पुत्र दशरथ को घोषित करता हूँ।

यवनिका

उपसंहार

स्थान · नयी दिल्ली

समय . प्रात.काल, फिर रात्रि

[पीछे की ओर एक सफेद चादर है । नेपथ्य में गान की ध्वनि सुन पड़ती है । और चादर पर सिनेमा के फिल्म का प्रदर्शन प्रारम्भ होता है ।]

गीत

हे अशोक ! मानव महान !

भारत गौरव ! मनुज पुजारी ! शाशक करुणावान !
सुन कराह, रण में, कलिग की, काँप उठे विजयी के प्राण,
रक्त-पात-भय-भीत मनुज ने, तुम मे पाया, सच्चा त्राण ।
रक्त-स्नाता विजय श्री का, मिथ्या माना, कलुपित मान,
पूर्ण अहिंसा विजित, मनुज-मन, सतत विजय का कहा प्रमाण ।
हिंसा त्रस्त जगत् ने पाया, तुम मे, पावन पैत्रिक प्रेम,
धर्म, सत्यता, दान, दयामय, आचारो मे समझा क्षेम ।
मृगया मोद-विहार गमन थे, नरपतियो के कौतुक खेल,
धार्मिक यात्रा प्रथा चलायी, नव सबोधि गमन व्रत झेल ।
शिलालेख अगणित मे अकित किये अनेको निज उपदेश,
जीवन-पथ को सरल सुसस्कृत करना, था, पावन उद्देश ।
रसना तृप्ति, एक ही क्षण की, जीवो का असख्य वलिदान;
घृणित, विगर्हित, कर्म-त्याग, यह, मानव का कर्त्तव्य महान् ।

आदरणीय धर्म अपना है, अपर धर्म भी वन्दन योग्य;
प्रजा-कार्य-तत्पर निशिवासर, नृप-हित राज्य न केवल भोग्य।
मातृ-पितृ चरणो की सेवा, परिचित सम्बन्धी हित मान;
द्विज, श्रमणो की सस्कृति रक्षा, लघु व्यय का, सचय का, ध्यान।
जल-हित कूप व्यवस्था पथ मे, आरोपित वृक्षो की पाँति;
छाया सुलभ, तृषा हो अपगत, पशु की मानव की ही भाँति।
प्रतिवेशी राज्यो मे, प्रचलित किये, नियम के नये विधान,
पावे पशु भी मानव सम ही चतुर चिकित्सक, औषधि-दान।
सतत प्रवर्तित धर्म-चक्र से, हिंस्र-व्याघ्र भी बने विनीत,
तेज, आत्म-बल, युक्त, अहिसा, शासित चारो दिशा पुनीत।

[गीत चलता रहता है और गीत के साथ सफेद चादर पर कुछ दृश्य आते तथा विलुप्त होते जाते हैं।].

[पहले साँची का बौद्ध-स्तूप दृष्टिगोचर होता है, आरम्भ में दूर से और फिर उसके अनेक भाग निकट से।]

[इसके बाद भारहुत-स्तूप दृष्टिगोचर होता है, यह भी पहले दूर से और फिर नजदीक से।]

[इन स्तूपो के पश्चात् लोरिया नन्दगढ़ का अशोक स्तंभ दिखता है। वह भी पहले दूर से और फिर निकट से।]

[तदनन्तर अशोक के एक के पश्चात् एक शिलालेख दिखायी देते हैं, ये भी पहले दूर से और फिर निकट से।]

[शिलालेखो के उपरान्त सारनाथ का अशोक स्तंभ दिखायी देता है, फिर इस अशोक स्तंभ के ऊपर का चार सिहों वाला शिरोभाग दिख पड़ता है। यह कुछ देर तक निकट

से दिखता रहता है। चारों सिंह उसके नीचे हाथी, घोड़ा, बैल, और सिंह और हरेक चौपाये के बीच मे एक-एक चक्र, इस प्रकार चार चक्र और इनके नीचे कमलासन बहुत निकट से दिखते हैं।]

[इसके पश्चात् दिल्ली के क़िले पर पडित जवाहरलाल नेहरू भारत का राष्ट्रीय ध्वज चढ़ाते हुए दिखते हैं। तदनन्तर यह राष्ट्रीय ध्वज नजदीक से दिखता है और इस पर का अशोक चक्र। यहाँ उपर्युक्त गीत पूर्ण हो जाता है और भारत का राष्ट्रीय गीत "जन गण मन" आरभ होता है। प्रातःकाल का सारा दृश्य रात्रि में बदल जाता है और रात्रि को दिल्ली के कुछ हिस्से रोशनी में दिखायी पड़ते हैं। राष्ट्र-गीत के समाप्त होते ही यह दृश्य समाप्त होता है।]

यवनिका